बुद्ध और महावीर

कि० घ० मशरूवाला

अनुवादक
काशिनाथ त्रिवेदी

नवजीवन प्रकाशन मन्दिर
अहमदाबाद – १४

प्रकाशकका निवेदन

स्व० श्री किशोरलाल मशरूवालाकी 'बुद्ध अने महावीर' नामक गुजराती पुस्तकके नवजीवन ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित चौथे संस्करणका यह हिन्दी अनुवाद है। गुजरातमें इस पुस्तकका अच्छा स्वागत हुआ है। आशा है, हिन्दी-भाषी जनताको भी यह खूब पसन्द आयेगी।

श्री किशोरलाल मशरूवाला हमारे देशके एक महान चिन्तक और साधक थे। उनके समान धर्म-परायण पुरुष इस देशके दो सिद्ध महापुरुषोंकी, बुद्ध और महावीरकी, आराधना किस दृष्टिसे करते थे, यह जानने और समझने-जैसी बात है। आशा है, विद्यालयोंके विद्यार्थियोंके लिए इतर वाचनकी और नव-शिक्षित प्रौढोंके लिए विशेष वाचनकी दृष्टिसे यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। साधारण पाठकोंके लिए भी यह पढ़ने योग्य ही मानी जायगी। और धर्मज्ञान-सम्बन्धी सामान्य वाचनके रूपमें भी इसकी उपयोगिता निर्विवाद रहेगी।

१५-१०-'६४

प्रस्तावना*

इस छोटीसी पुस्तकमालामें जगतके कुछ अवतारी पुरुषोंका संक्षिप्त जीवन-परिचय देनेका मेरा विचार है। इस परिचयके लिए जो दृष्टिकोण सामने रखा गया है, उसके संबंधमें दो बातें लिखना जरूरी है।

अवतारी पुरुषका अर्थ क्या है? हिन्दुओंका खयाल है कि जब पृथ्वी पर धर्मका लोप होता है, अधर्म बढ़ जाता है, असुरोंके उपद्रवसे समाज पीड़ा पाता है, साधुताका तिरस्कार किया जाता है, निर्बलकी रक्षा नहीं होती, तब परमात्माका अवतार प्रकट होता है। लेकिन हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि अवतार किस तरह प्रकट होते हैं, प्रकट होने पर किन लक्षणोंसे उन्हें पहचाना जाता है, और उन्हें पहचान कर या उनकी भक्ति करके हमें अपने जीवनमें किस प्रकारका परिवर्तन करना चाहिये।

सर्वत्र एक ही परमात्माकी शक्ति — सत्ता — काम कर रही है। क्या मुझमें और क्या आपमें, सर्वत्र एक ही प्रभु व्याप्त है। उसीकी शक्तिसे सब चलते-फिरते और हिलते-डोलते हैं। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसु आदिमें भी परमात्माकी यही शक्ति विद्यमान थी। तब हममें और राम, कृष्ण आदिमें अंतर क्या है? वे भी मेरे और आपके-जैसे ही आदमी दिखाई पड़ते थे; उन्हें भी मेरी और आपकी तरह दुःख सहने पड़े थे और पुरुषार्थ करना पड़ा था। फिर भी हम उन्हें अवतार क्यों कहते हैं? हजारों वर्षोंके बाद भी हम उन्हें अब तक क्यों पूजते हैं?

वेदका एक वचन है: 'आत्मा सत्यकाम—सत्यसंकल्प है।' इसका अर्थ यह होता है कि हम जो सोचें या चाहें, वही प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु आसक्तिके कारण हमारी कामनायें मिश्र होती हैं, इसलिये हम

---

* गुजराती पुस्तकोंकी पहली आवृत्तिकी प्रस्तावना।

परमेश्वर, परमात्मा, ब्रह्म कहते हैं। जानमें या अनजानमें भी इसी परमात्माकी शक्तिका आलम्बन — शरण — आश्रय लेकर हमने अपनी वर्तमान स्थिति प्राप्त की है; और भविष्यमें जो स्थिति हम प्राप्त करेंगे, वह भी इसी शक्तिके आलम्बनसे करेंगे। राम-कृष्णने भी इसी शक्तिके आलम्बनसे सर्वेश्वरपद — अवतारपद — प्राप्त किया था; तथा आगे जो अवतार होंगे वे भी इसी शक्तिका आश्रय लेकर होंगे। हममें और उनमें अंतर केवल यही है कि हम उस शक्तिका उपयोग मूढ़तापूर्वक, अज्ञानपूर्वक करते हैं; उन्होंने बुद्धिपूर्वक उसका अवलम्बन लिया था।

दूसरा अन्तर यह है कि हम अपनी क्षुद्र वासनाओंकी तृप्तिके लिए परमात्माकी शक्तिका उपयोग करते हैं। अवतारी पुरुषोंकी आकांक्षायें, उनके आशय महान और उदार होते हैं; वे उन्हींके लिए आत्मबलका आश्रय लेते हैं।

तीसरा अन्तर यह है कि जनसमाज महापुरुषोंके वचनोंका अनुसरण करनेवाला और उनके आश्रयमें एवं उनके प्रति रही अपनी श्रद्धामें अपना उद्धार माननेवाला होता है। प्राचीन शास्त्र ही उसके आधार होते हैं। किन्तु अवतारी पुरुष केवल शास्त्रोंका अनुसरण नहीं करते; वे शास्त्रोंको स्वयं बनाते और उनमें परिवर्तन भी करते हैं। उनके वचन ही शास्त्र बन जाते हैं और उनके आचरण ही दूसरोंके लिए दीपस्तम्भका काम देते हैं। उन्होंने परम तत्त्वको जान लिया है। अपने अंत:करणको उन्होंने शुद्ध कर लिया है। ऐसे ज्ञानवान, विवेकवान और शुद्धचित्त लोगोंको जो विचार सूझते हैं, जो आचरणीय प्रतीत होता है, वही सच्छास्त्र और वही सद्धर्म बन जाता है। दूसरे कोई शास्त्र न तो उन्हें बाध सकते हैं, न उनके निर्णयमें फर्क पैदा कर सकते हैं।

यदि हम अपने आशयोंको उदार बनायें, अपनी आकांक्षाओंको उन्नत करें और ज्ञानपूर्वक प्रभुकी शक्तिका आश्रय लें, तो प्रभु हमारे अन्दर भी अवतार-रूपमें प्रकट होनेकी कृपा कर सकता है। घरमें

विजलीकी शक्ति लगी हुई है; जिस तरह हम उसका उपयोग एक क्षुद्र घण्टी बजानेमें कर सकते हैं, उसी तरह उसके द्वारा सारे घरको दीपावलीसे सुशोभित भी कर सकते हैं। इसी प्रकार प्रभु हममें से प्रत्येकके हृदयमें विराजमान है; हम चाहें तो उसकी सत्ता द्वारा अपनी एक क्षुद्र वासनाको तृप्त कर सकते हैं, और चाहें तो महान एवं चारित्र्यवान् बनकर संसारसे तर सकते हैं, तथा दूसरोंको तरनेमें मदद कर सकते हैं।

अवतारी पुरुषोंने अपनी रग-रगमें व्याप्त परमात्माके बलसे पवित्र, पराक्रमी और परदुःख-भंजन बनना चाहा। उन्होंने उस बलके द्वारा सुख-दुःखसे परे, करुणामय, वैराग्यवान, ज्ञानवान और प्राणिमात्रका मित्र बनना चाहा। अपने स्वार्थत्यागके कारण, इन्द्रिय-विजयके कारण, मनके संयमके कारण, चित्तकी पवित्रताके कारण, करुणाकी अतिशयताके कारण, प्राणिमात्रके प्रति अतिशय प्रेमके कारण, दूसरोंके दुःख दूर करनेके लिए अपनी समस्त शक्तिको खर्च करनेकी निरंतर तत्परताके कारण, अपनी कर्तव्य-परायणताके कारण, निष्कामताके कारण, अनासक्तिके कारण, निरभिमानताके कारण और सेवा द्वारा गुरुजनोंकी कृपा प्राप्त कर लेनेके कारण वे अवतार माने गये, मनुष्य-मात्रके पूज्य बने।

यदि हम चाहें तो हम भी इसी तरह पवित्र बन सकते हैं, ऐसे कर्तव्य-परायण हो सकते हैं, इतनी करुणा-वृत्ति विकसित कर सकते हैं, ऐसे निष्काम, अनासक्त और निरभिमान बन सकते हैं। अवतारोंकी भक्ति करनेका हेतु भी यही है कि वैसे बननेका हमारा प्रयत्न निरन्तर चालू रहे। जिस हद तक हम उनके जैसे बनते हैं, कह सकते हैं कि उस हद तक हम उनके निकट पहुंचे हैं — हमने उनके अक्षरज्ञानको प्राप्त किया है। यदि हम उनके जैसे बननेका प्रयत्न नहीं करते, तो उनका नाम-स्मरण करना हमारे लिए व्यर्थ है, और ऐसे नाम-स्मरणसे उनके पास तक पहुंचनेकी आशा रखना भी व्यर्थ है।

इन जीवन-चरित्रोंको पढ़कर पाठकोंका अवतारोंको पूजने लगना [illegible] इष्ट नहीं है। इन पुस्तकोंको पढ़नेका श्रम तो तभी सफल हुआ

माना जायगा, जब पाठक अपने अंदर अवतारोंको परखनेकी शक्ति उत्पन्न करेंगे और वैसे बननेके लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहेंगे।

अंतमें एक वाक्य लिखना जरूरी है। मैं यह नहीं कह सकता कि इसमें जो कुछ नया है, वह पहली बार मुझे ही सूझा है। अगर यह कहूं कि मेरे जीवन-ध्येयको तथा उपासनाके मेरे दृष्टिकोणको बदल डालनेवाले और मुझे अंधकारसे प्रकाशमें ले आनेवाले मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ही मुझे निमित्त बनाकर यह सब कहते हैं, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। फिर भी इसमें जो त्रुटियां हैं, वे मेरे ही विचारोंकी और ग्रहण-शक्तिकी समझी जानी चाहिये।

'राम और कृष्ण' के लेखोंके लिए मैं श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य लिखित इन अवतारोंके चरित्रोंके गुजराती अनुवादकोंका और बुद्धदेवके चरित्रके लिए श्री धर्मानन्द कोसम्बीकी 'बुद्धलीला-सार-संग्रह' और 'बुद्ध, धर्म और संघ' का ऋणी हूं। महावीरकी वस्तु बहुत-कुछ हेमाचार्य-कृत 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष' पर आधारित है। और ईसुके लिए मैंने 'बाइबल' का उपयोग किया है।

मार्गशीर्ष कृष्ण ११, संवत् १९७९ (सन् १९२९)

किशोरलाल घ० मशरूवाला

दूसरे संस्करणके स्पष्टीकरणसे

इस पुस्तककी दूसरी आवृत्ति निकालनेके लिए मैं अपनी अनुमति देनेमें आनाकानी किया करता था। क्योंकि यद्यपि पुस्तकके सम्बन्धमें प्रकाशित समालोचनायें सभी अनुकूल थीं, तथापि गांधीजीके सम्बन्धसे मेरे साथी कहे जा सकनेवाले एक मित्रने इन पुस्तकोंका बड़ी बारीकीसे अध्ययन किया है और इन पर अपनी आपत्तियोंकी एक सूची मुझे सौंपी है। उनकी राय यह बनी है कि मैंने इन पुस्तकोंमें "रामकी केवल विडम्बना की है", "कृष्णका तो कचूमर ही निकाल डाला है", और "बुद्धके साथ ज्यादती करनेमें भी कमी नहीं रखी।" चूंकि वे स्वयं जैन नहीं थे, इसलिए 'महावीर' के बारेमें वे टीका करनेमें असमर्थ थे। किन्तु एक-दो जैन मित्रोंने महावीरके मेरे आलेखन पर अपना तीव्र असन्तोष व्यक्त किया था। 'ईशु ख्रिस्त' के सम्बन्धमें दो गुजराती ख्रिस्तियोंकी ओरसे भी आपत्तियां आई हैं। यह कहनेमें कोई हर्ज नहीं कि 'सहजानन्द स्वामी' वाली पुस्तक सम्प्रदायमें अमान्य-सी ही हुई है। इस स्थितिमें मैंने यह अनुभव किया कि पुस्तकके फिर प्रकाशित होनेसे पहले मुझे टीकाकारोंकी दृष्टिसे इन पुस्तकों पर फिर-फिर विचार करना चाहिये और यह भी जानना चाहिये कि जिन्हें ये रुचिकर प्रतीत हुई हैं, उन्हें किन कारणोंसे रुचिकर लगी हैं। और इस दृष्टिसे आवश्यकता पड़ने पर दूसरी आवृत्तिमें सुधार करने चाहिये। इन कारणोंसे दूसरी आवृत्ति निकालनेके सम्बन्धमें मेरा उत्साह मन्द था, किन्तु भाई [illegible] मित्रोंका आग्रह बराबर बना रहा। इसलिए अन्तमें उनकी इच्छाके वश होकर दूसरी आवृत्ति निकालनेकी अनुमति देनी पड़ी है।

चूंकि 'अनुमति दी है', इसलिए पुस्तकको फिर सुधारा भी है और इसके कुछ अंश दूसरी बार फिर लिख डाले हैं। किन्तु मैं यह विश्वास नहीं दिला सकता कि जो सुधार किये हैं, उनसे मैं अपने टीकाकारोंको सन्तुष्ट कर सकूंगा। उलटे, इन जीवन-नायकोंके [illegible]

जहां-जहां मेरा रुख पहली आवृत्तिमें अस्पष्ट रहा था, वह अब अधिक स्पष्ट हुआ है।

नवजीवन प्रकाशन मन्दिरने पहली आवृत्तिमें इस जीवन-परिचय-मालाका नाम 'अवतार-लीला लेखमाला' रखा था और मैंने उसे रहने दिया था। किन्तु इस नामके औचित्यके बारेमें मेरे मनमें शंका थी ही। 'अवतार' शब्दके मूलमें सनातनी हिन्दूके मनमें जो एक विशिष्ट कल्पना पाई जाती है, वह कल्पना मुझे मान्य नहीं है। पहली आवृत्तिकी प्रस्तावना पढ़ते ही यह बात स्पष्ट हो जाती है। यह कहनेमें कोई दोष नहीं कि उक्त कल्पनाके साथ पुष्ट होनेवाली भ्रामक मान्यताको दूर कर देने पर भी राम-कृष्ण आदि महापुरुषोंके प्रति पूज्यभाव बनाये रखना इस पुस्तकका एक हेतु है। फिर 'अवतार' शब्दके साथ 'लीला' शब्दका सम्बन्ध वैष्णव-सम्प्रदायोंमें विशेष प्रकारकी धारणा निर्माण करता है और मैंने यह अनुभव किया है कि 'लीला' शब्द अनर्थमूलक भी सिद्ध हुआ है। इस कारण 'अवतार-लीला लेखमाला' नाम छोड़ दिया है।

किन्तु चूंकि अपनी मूल प्रस्तावनामें मैंने इन चरित्र-नायकोंके बारेमें 'अवतारी पुरुष' शब्दका उपयोग किया था, अतः संभव है कि उसीसे प्रेरित होकर प्रकाशकने 'अवतार-लीला लेखमाला' नाम रखा हो। मराठी भाषामें 'अवतारी पुरुष' एक रूढ़ प्रयोग है और उसका अर्थ केवल विशेष विभूति-सम्पन्न पुरुष होता है, और इसी कारण वहां शिवाजी, रामदास, तुकाराम, एकनाथ, लोकमान्य तिलक आदिके समान कोई भी लोकोत्तर कल्याणकारी शक्ति प्रकट करनेवाला व्यक्ति 'अवतारी पुरुष' कहलाता है। इन शब्दोंका उपयोग करते समय मेरे मनमें यही कल्पना थी। लेकिन चूंकि गुजरातीमें ऐसा कोई शब्द-प्रयोग नहीं है, इसलिए थोड़ा घोटाला खड़ा हुआ है। अतएव इस आवृत्तिमें से यह शब्द-प्रयोग हटा दिया गया है।

प्रश्न है कि इन संक्षिप्त चरित्रोंकी सच्ची उपयोगिता कितनी? यह तो नहीं कहा जा सकता कि इतिहास, पुराण अथवा बौद्ध-जैन-ख्रिस्ती शास्त्रोंका गहन अभ्यास करके, समीक्षात्मक वृत्तिसे मैंने कोई

नया संशोधन किया है। इसके लिए तो पाठकोंको श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य अथवा श्री बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय आदिकी विद्वत्तापूर्ण पुस्तकोंका अध्ययन करना चाहिये। दूसरे, चरित्र-नायकोंके प्रति असाम्प्रदायिक दृष्टि रखते हुए भी नित्यके धार्मिक वाचनमें उपयोगी सिद्ध हो सकनेवाले अच्छे चरित्र उस ढंगसे अथवा विस्तारसे लिखे नहीं गये हैं। मैं मानता हूं कि ऐसी पुस्तकोंकी आवश्यकता है। किन्तु इस कामको हाथमें लेनेके लिए जितना अध्ययन आवश्यक है, उसके लिए मैं कोई समय या शक्ति प्राप्त कर सकूंगा, इसकी कोई संभावना नहीं दीखती। अतएव मेरी इस लेखमालाका हेतु इतना ही है:

मनुष्य स्वभावसे ही किसी-न-किसीकी पूजा करता है। वह कुछको देवके रूपमें पूजता है, तो कुछको मनुष्य समझते हुए भी उनकी पूजा करता है। जिनको देवके रूपमें पूजता है, उन्हें वह अपनेसे भिन्न जातिका समझता है; जिन्हें मनुष्य मानकर पूजता है, उन्हें वह न्यूनाधिक अपने आदर्शके रूपमें पूजता है। राम-कृष्ण-बुद्ध-महावीर-ईशु आदिको भिन्न-भिन्न समाजोंके लोग देव बनाकर — अ-मानव बनाकर — पूजते रहे हैं। आज तककी हमारी रीति यह रही है कि हमने इन्हें आदर्श मानकर, इनके समान बननेकी उमंग रखकर और उसके लिए प्रयत्न करके अपना अभ्युदय करनेकी बात नहीं सोची, बल्कि उनका नामोच्चारण करके, उनमें उद्धारक शक्तिका आरोपण करके और उसमें विश्वास रखकर अपनी उन्नति करनेका ध्यान रखा है। यह रीति कम या अधिक अन्धश्रद्धाकी — अर्थात् जहां तक बुद्धि न चले केवल वहां तक ही श्रद्धा रखनेकी नहीं है, बल्कि बुद्धिका विरोध करनेकी श्रद्धाकी है। ऐसी श्रद्धा विचारके सामने टिक नहीं सकती।

सभी सम्प्रदायोंके आचार्यों, साधुओं, पंडितों आदिके जीवन-[illegible] [illegible] भी इस भावसे लिखा गया है कि भिन्न-भिन्न महापुरुषोंमें इस देव-भावनाको अधिक दृढ़ बनानेका प्रयत्न किया जाय। [illegible] परिणाम-[illegible] [illegible], [illegible] हुई [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] हुई [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] अधिक [illegible] [illegible] है कि [illegible]

चरित्रके सौ में से अस्सी या उससे भी अधिक पृष्ठ इसी चीजसे भरे मिलते हैं। साधारण लोगोंके मन पर इसका यह प्रभाव पड़ा है कि वे मनुष्यका मूल्य उसकी पवित्रता, लोकोत्तर शील-सम्पन्नता, दया आदि सद्गुणों और वीर पुरुषोंके गुणोंके कारण नहीं कर सकते, बल्कि उससे चमत्कारकी अपेक्षा रखते हैं, और चमत्कार करनेकी शक्तिको महापुरुषका आवश्यक लक्षण समझते हैं। शिलाको अहल्या बनाने, गोवर्धनको छिगुनी अंगुली पर उठाने, सूर्यको आकाशमें रोके रखने, पानी पर चलने, एक टोकनी-भर रोटीसे हजारों लोगोंको जिमाने, मरनेके बाद फिर सजीवन करने, आदि आदिके रूपमें प्रत्येक महापुरुषके चरित्रमें आनेवाली इन कथाओंके रचयिताओंने जनताको एक प्रकारका गलत दृष्टिकोण दे दिया है। इस तरहसे चमत्कार कर दिखानेकी शक्ति साध्य होने पर भी केवल उसीके कारण कोई मनुष्य महापुरुष कहलाने योग्य नहीं माना जाना चाहिये। महापुरुषोंकी चमत्कार करनेकी शक्ति, अथवा 'अरेबियन नाइट्स'-जैसी पुस्तकोंमें दी गई जादूगरोंकी शक्ति, मनुष्यताकी दृष्टिसे इन दोनोंकी कीमत एक-सी ही है। ऐसी शक्तिके कारण कोई पूजा-पात्र नहीं बनना चाहिये। रामने शिलाको अहल्या बनाया अथवा पानी पर पत्थर तैराये, इस बातको निकाल डालें और यह कहें कि कृष्णने केवल मानुषी शक्तिके सहारे ही अपना जीवन बिताया और मानें कि ईसाने एक भी चमत्कार नहीं दिखाया, तो भी राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा आदि पुरुष किस कारण मानव-जातिके लिए पूजनीय हैं, इस दृष्टिसे इन चरित्रोंको लिखनेका प्रयत्न किया गया है। संभव है कि कुछ लोगोंको यह रुचिकर न हो; किन्तु मुझे विश्वास है कि यही सच्ची दृष्टि है और इसी कारण मैंने इस रीतिको न छोड़नेका आग्रह रखा है।

महापुरुषोंको निरखनेका यह दृष्टिकोण जिन्हें स्वीकार हो, उनके लिए यह पुस्तक है।

विले पार्ले, किशोरलाल घ० मशरूवाला

फागुन बदी ३०,

संवत् १९८५

अनुक्रमणिका

बुद्ध

महाभिनिष्क्रमण

तपश्चर्या

सम्प्रदाय

उपदेश

बौद्ध शिक्षापद

कुछ घटनायें और अन्त

टिप्पणियां

महावीर

बुद्ध—महावीर

समालोचना

श्री धर्मानंदजी कोसंबी
तथा
पं. श्री सुखलालजी संघवीको
सविनय अर्पण

बुद्ध

महाभिनिष्क्रमण

निस्य जलती अग्निमें यह हास्य और आनन्द क्या?
ओ अंधेरेमें भटकनेवालो, खोजते दीपक क्यों न भला?[1]

लगभग २५०० वर्ष पहले हिमालयकी तलहटीके निकट चम्पारण्यके उत्तरमें नेपालकी तराईके बीच कपिल-वस्तु नामकी एक नगरी थी। वहां शाक्य[2] वंशके क्षत्रियोंका एक छोटा प्रजासत्ताक राज्य था। शुद्धोदन नामक एक शाक्य उसका अध्यक्ष था। उसे 'राजा' का पद प्राप्त था। शुद्धोदनने गोतम वंशकी मायावती और महाप्रजापति नामक दो बहनोंके साथ विवाह किया था। मायावतीकी कोखसे एक पुत्रका जन्म हुआ, किन्तु पुत्र-जन्मके बाद सात दिनमें ही वह परलोकवासिनी हो गई और पुत्रके लालन-पालनका भार महाप्रजापति पर आ पड़ा। उसने बालकको अपने सगे बेटेकी तरह पाला और उस बालकने भी उसे सगी मांकी तरह प्यार किया। इस बालकका नाम था, सिद्धार्थ।

जन्म

---

१. को नु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेसथ॥
(धम्मपद)

२. इसी कारण बुद्ध शाक्य और गौतम मुनिके नामसे भी पहचाने जाते हैं।

२. शुद्धोदनने सिद्धार्थको बहुत लाड़-प्यारसे पाला। उसने उसे राजकुमारको शोभा देनेवाली शिक्षा तो अवश्य दी, किन्तु साथ ही संसारके सारे विलास सुलभ करनेमें भी कोई कमी नहीं रखी। यशोधरा नामक एक गुणवान कन्याके साथ उसका विवाह हुआ था और उससे उसे राहुल नामका एक पुत्र था। सिद्धार्थने अपने भोगोंका वर्णन इस प्रकार किया है:

सुखोपभोग

"मैं बहुत सुकुमार था। मेरे सुखके लिए मेरे पिताने तालाब खुदवाकर उसमें नाना प्रकारकी कमलिनियां लगवाई थीं। मेरे वस्त्र रेशमी थे। मुझ पर ठंड और धूपका असर न हो, इसके लिए मेरे सेवक मुझ पर श्वेत छत्र लगाये रहते थे। सरदी, गरमी और वर्षाके लिए मेरे तीन अलग-अलग राजमहल थे। जब मैं वर्षाकालके लिए बनाये गये महलमें रहने जाता था, तो चार महीनों तक बाहर न निकलता था और स्त्रियोंसे गाना-बजाना सुनकर अपना समय बिताता था। दूसरोंके घर सेवकोंको हलके प्रकारका अन्न दिया जाता था, लेकिन मेरे यहां मेरे दास-दासियोंको उत्तम आहारके साथ चावल दिये जाते थे।"[१]

३. इस प्रकार उसकी जवानी बीत रही थी, किन्तु इतने भोग-विलासके बीच भी सिद्धार्थका चित्त स्थिर था। बचपनसे ही वह विचारशील और एकाग्र चित्तवाला था। उसका यह सहज स्वभाव था कि जो कुछ दिखाई पड़े, उसे बारीकीसे देखना और उस पर गहरा विचार करना। कौन ऐसा पुरुष

चिन्तन-वृत्ति

१. 'बुद्ध, धर्म और संघ' नामक पुस्तकसे।

है कि जिसने सदैव विचारशील रहे बिना ही महत्ता प्राप्त की हो? और कौनसा प्रसंग इतना तुच्छ हो सकता है कि जो विचारशील पुरुषके जीवनमें अद्भुत परिवर्तन करनेकी सामर्थ्य न रखता हो?[1]

४. सिद्धार्थ केवल अपनी जवानीका उपभोग ही नहीं कर रहा था, बल्कि साथ ही वह यह भी सोचता रहता था कि जवानी क्या चीज है, उसके आरम्भमें क्या है और अन्तमें क्या है। यह भोग-विलासमें रमा ही नहीं रहता था, बल्कि यह भी सोचता रहता था कि भोग-विलास क्या चीज है, इसमें सुख कितना है, दुःख कितना है और इसके भोगका समय कितना है। वह कहता है:

विचार

"इस प्रकारकी सम्पत्तिका उपभोग करते-करते मेरे मनमें विचार उठा कि एक साधारण बिना पढ़ा-लिखा आदमी खुद भी बुढ़ापेके फेरमें पड़नेवाला होता है, फिर भी वह बूढ़े आदमीको देखकर ऊब जाता है और उसका तिरस्कार करता है! लेकिन चूंकि मैं बुढ़ापेके फंदेमें फंसनेवाला हूं, इसलिए अगर मैं भी साधारण आदमीकी तरह जराग्रस्त मनुष्यको देखकर ऊब जाऊं अथवा उसका तिरस्कार करूं, तो यह मुझे शोभा नहीं देगा। इस विचारके कारण जवानीका मेरा मद जड़-मूलसे नष्ट हो गया।

"साधारण बिना पढ़ा-लिखा आदमी खुद बीमारीके फेरमें फंसनेवाला है, फिर भी बीमार मनुष्यको देखकर वह ऊब

---

१. देखिये, आगे टिप्पणी – १।

जाता है और उसका तिरस्कार करता है! किन्तु मैं स्वयं बीमारीके फेरसे छूटा नहीं, ऐसी दशामें यदि मैं बीमारको देखकर ऊबूं या उसका तिरस्कार करूं, तो वह मुझे शोभा नहीं देगा। इस विचारसे मेरा आरोग्य-मद जड़-मूलसे उतर गया।

"साधारण बिना पढ़ा-लिखा मनुष्य स्वयं मरणधर्मी होने पर भी मृत शरीरको देखकर ऊबता है और उसका तिरस्कार करता है! परन्तु मैं भी मृतधर्मी हूं, तथापि साधारण मनुष्यकी भांति मृत शरीरको देखकर मैं ऊब जाऊं अथवा उसका तिरस्कार करूं, तो वह मुझे शोभा न देगा। इस विचारके कारण मेरा जीवन-मद बिलकुल उतर गया।"[१]

मोक्षकी जिज्ञासा

५. इस संसारमें सुखी वह माना जाता है, जिसके पास घर, गाड़ी, घोड़ा, पशु, धन, स्त्री, पुत्र और दास-दासी आदि होते हैं। माना यह जाता है कि मनुष्यका सुख इन वस्तुओं पर निर्भर करता है। किन्तु सिद्धार्थ सोचने लगा:

"मैं स्वयं जराधर्मी, व्याधिधर्मी, मरणधर्मी और शोकधर्मी होते हुए भी जरा, व्याधि, मरण और शोकसे सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुओं पर अपने सुखको निर्भर समझता हूं, यह

१. 'बुद्ध, धर्म और संघ' पुस्तकके आधार पर। सिद्धार्थको अनायास क्रमशः बूढ़े, रोगी, मृत और संन्यासीका दर्शन होनेसे उसके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ और एक दिन वह [illegible] छोड़कर निकल गया, इस आशयकी कथा प्रचलित है। किन्तु ये कथायें कल्पित मालूम होती हैं। [illegible] पुस्तकमें भी [illegible] विवेचन [illegible]।

ठीक नही है ।" जो स्वयं दु:खरहित नहीं है, उससे दूसरेको सुख कैसे हो सकता है? अतएव जहां जरा, व्याधि, मरण अथवा शोक न हों, ऐसी वस्तुकी खोज करनी चाहिये और उसीका आश्रय लेना चाहियें ।

६. जो मनुष्य इस विचारमें डूबा रहे, उसे संसारके सुखोंमें रस क्या मिले? जो सुख नाशवान है, जिसका भोग एक क्षणके बाद ही केवल भूतकालकी स्मृति बनकर रह जाता है, जो बुढ़ापे, रोग और मृत्युको अधिकाधिक समीप लाता है, जिसका वियोग शोकको जन्म देनेवाला है, उस सुख और भोगके प्रति उसका मन उदास हो गया । जिसके परिवारमें कोई प्रिय मनुष्य दीवालीके दिन अब मरे तब मरे की स्थितिमें हो, क्या उसे उस दिन पक्वान्न प्यारे लगेंगे? अथवा रात दीपावली देखने जानेकी इच्छा होगी? इसी प्रकार सिद्धार्थको देहका जरा, व्याधि और मरणमें होनेवाला अनिवार्य रूपान्तर प्रतिक्षण दीखने लगा था, इस कारण सुखोपभोगके प्रति उसे अरुचि हो गई थी । वह जहां-तहां इन वस्तुओंको समीप आते देखने लगा और इस कारण अपने सगे-सम्बन्धियों, दास-दासियों आदिको सुखके पीछे ही दौड़ते देखकर उसका हृदय करुणासे परिपूरित होने लगा । लोग इतने जड़ क्यों हैं? वे विचार क्यों नहीं करते? ऐसे तुच्छ सुखके लिए वे इतने आतुर क्यों रहते हैं? आदि-आदि विचार उसके मनमें उठने लगे । किन्तु इन विचारोंको प्रकट कब किया जाय? इस सुखके बदले दूसरा कोई अविनाशी सुख दिखाया जा सके, तभी ये बातें करना उपयोगी हो सकता

वैराग्य-वृत्ति

है। ऐसे सुखकी खोज करनी ही चाहिये। अपने हितके लिए यही सुख प्राप्त करना चाहिये और प्रियजनोंके प्रति सच्चा प्रेम प्रदर्शित करना हो, तो भी अविनाशी सुखको ही खोजना चाहिये।

महाभिनिष्क्रमण

७. आगे वह कहता है: "इन विचारोंमें कुछ समय बीतनेके बाद, यद्यपि मैं उस समय (२९ वर्षका) नवयुवक था, मेरा एक भी बाल पका नहीं था, और मेरे माता-पिता मुझे अनुमति देते नहीं थे, आंखोंसे निकलनेवाले अश्रु-प्रवाहसे उनके गाल भीग गये थे और वे लगातार रोते जा रहे थे, तो भी मैं सिर मुंड़ाकर तथा गेरुए वस्त्र पहनकर घरसे बाहर निकल पड़ा।"[१]

सिद्धार्थकी करुणा

८. इस प्रकार सगे-सम्बन्धी, माता-पिता, पत्नी-पुत्र आदिको छोड़कर सिद्धार्थ कुछ निष्ठुर नहीं बन गया था। उसका हृदय तो पारिजातकसे भी अधिक कोमल हो गया था। प्राणिमात्रके प्रति प्रेम-भावसे उमड़ने लगा था। उसे यह अनुभव होने लगा था कि यदि जीना है, तो संसारके कल्याणके लिए ही जीना चाहिये। केवल अपने लिए मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छासे ही वह गृह-त्यागके लिए प्रेरित नहीं हुआ था, बल्कि सिद्धार्थने यह सोचकर संन्यास-धर्म स्वीकार किया था कि संसारमें दुःख-निवारणका कोई उपाय है या नहीं, इसका पता लगाना आवश्यक है और इसके लिए जो सुख मिथ्या प्रतीत होता है, उसका त्याग न करना तो मोह ही माना जायेगा।

१. 'बुद्ध, धर्म और संघ' नामक पुस्तकसे।

तपश्चर्या

अप्रज्ञको नहीं ध्यान, न प्रज्ञा ध्यानहीनको;
प्रज्ञा और ध्यानसे युक्त, निर्वाण उसके पासमें।[1]

भिक्षावृत्ति

घर छोड़कर सिद्धार्थ दूर निकल गया। चमारसे लेकर ब्राह्मण तक सब जातिके लोगोंसे प्राप्त भिक्षाको एक पात्रमें इकट्ठा करके वह खाने लगा। आरंभमें उसे यह सब बहुत ही कठिन मालूम हुआ। परन्तु उसने विचार किया: "अरे जीव, संन्यास लेनेके लिए तुझ पर किसीने जबरदस्ती नहीं की थी। तूने अपनी प्रसन्नतासे यह वेश धारण किया है, आनन्दपूर्वक राज्य-सम्पत्तिका त्याग किया है, तो अब तुझे यह भिक्षान्न खानेमें अरुचि क्यों हो रही है? मनुष्य-मनुष्यके बीच भेदभाव देखकर तेरा हृदय फटने लगता था; लेकिन अब खुद तुझ पर ही हीन जातिके मनुष्यका अन्न खानेका प्रसंग आते ही तेरे मनमें उन लोगोंके लिए अनुकम्पा प्रकट न होकर अरुचि क्यों पैदा होती है? सिद्धार्थ, छोड़ दे इस दुर्बलताको! सुगंधित भातमें और हीन लोगों द्वारा दिये गये इस अन्नमें तुझे कोई भेद प्रतीत नहीं होना चाहिये। जब तू इस स्थितिको प्राप्त कर लेगा,

---

१. नत्थि झान अपञ्ञास्स पञ्ञा नत्थि अज्झायतो।
यम्हि झान च पञ्ञा च स वे निब्बानसन्तिके॥
(धम्मपद)

तभी तेरी प्रव्रज्या सफल होगी।" इस प्रकार अपने मनको बोध देकर सिद्धार्थने विषम दृष्टिवाले संस्कारोंका दृढ़तापूर्वक त्याग किया।[१]

गुरुकी खोज – कालाम मुनिके स्थान पर

२. अब वह आत्यन्तिक सुखका मार्ग दिखानेवाले गुरुको खोजने लगा। पहले वह कालाम नामक एक योगीका शिष्य बना। उसने सिद्धार्थको पहले अपने सिद्धान्त सिखाये। सिद्धार्थने उन्हें सीख लिया और वह इस विषयमें इतना कुशल हो गया कि यदि कोई कुछ प्रश्न पूछे, तो उनके ठीक-ठीक उत्तर दे सके और उसके साथ चर्चा भी कर सके। कालामके अनेक शिष्य इस प्रकार कुशल पंडित बन चुके थे, किन्तु सिद्धार्थको इससे कोई संतोष नहीं हुआ। उसे अमुक-अमुक सिद्धांतों पर वाद-विवाद कर सकनेकी शक्तिकी कोई आवश्यकता नहीं थी। वह तो दुःख-निवारणकी औषधिकी खोजमें निकला था। केवल वाद-विवादसे यह औषधि क्योंकर मिलती? इसलिए उसने अपने गुरुसे विनयपूर्वक कहा: "मुझे केवल आपके सिद्धान्तोंका ज्ञान नहीं चाहिये; आप तो मुझे वह रीति सिखाइये, जिससे मैं इन सिद्धान्तोंका स्वयं अनुभव कर सकूं।" इस पर कालाम मुनिने सिद्धार्थको अपना समाधि-मार्ग सिखाया। उस मार्गकी सात भूमिकायें थीं। सिद्धार्थने सातों भूमिकायें झट-झट सिद्ध कर लीं। बादमें उसने गुरुसे कहा: "अब आगे क्या?" इस पर कालाम बोले: "भैया, मैं तो इतना ही जानता हूं। जितना मैंने जाना है,

१. [illegible], [illegible] टिप्पणी–२।

उतना तुम भी जान चुके हो; इसलिए अब तुम और मैं दोनों समान बन गये हैं। अतएव अब हम दोनों मिलकर अपने इस मार्गका प्रचार करें।" इन शब्दोंके साथ कालामने सिद्धार्थका बहुत सम्मान किया।

३. किन्तु इससे सिद्धार्थको सन्तोष नहीं हुआ। उसने सोचा: "इस समाधिसे[1] कुछ समयके लिए दुःखके कारणोंको दबा कर रखा जा सकेगा, किन्तु उनका समूल नाश नहीं होगा। अतएव मोक्षका मार्ग मेरे गुरु जो कहते हैं, उसकी अपेक्षा कुछ भिन्न होना चाहिये।"

असन्तोष

४. इस विचारसे उसने कालामका आश्रम छोड़ दिया और उद्रक नामक एक दूसरे योगीके पास पहुंचा। उसने सिद्धार्थको समाधिकी आठवीं भूमिका सिखाई। सिद्धार्थने उसे भी सिद्ध कर लिया। इस पर उद्रकने उसे अपने समान ही मानकर उसका बहुत सम्मान किया।

फिरसे खोज-उद्रक मुनिके स्थान पर

५. किन्तु सिद्धार्थको अब भी सन्तोष नहीं हुआ। इसके द्वारा भी दुःख-रूप वृत्तियोंको कुछ समयके लिए दबाया जा सकता है, किन्तु उनका समूल नाश तो होता ही नहीं।

पुनः असन्तोष

६. सिद्धार्थने सोचा कि अब सुखके मार्गकी खोज उसे अपने ही प्रयत्नसे करनी चाहिये। इस प्रकार विचार करके वह घूमता-फिरता गयाके पास उरुवेला गांवमें पहुंचा।

आत्म-प्रयत्न

---

१. देखिये, आगे टिप्पणी – ३।

देह-दमन

७. वहां उसने तप करनेका निश्चय किया। उन दिनों यह माना जाता था कि तपका अर्थ है, उग्र रूपसे शरीरका दमन। उस प्रदेशमें बहुतसे तपस्वी रहते थे। उन सबकी रीतिके अनुसार सिद्धार्थने भी कठिन तप शुरू किया। जाड़ोंमें ठंड, गरमियोंमें धूप और बरसातमें वर्षाकी धारायें सहन कीं। उपवास करके उसने शरीरको बहुत ही क्षीण कर डाला। वह घंटों तक श्वासोच्छ्वास रोक कर काष्ठकी तरह ध्यानमें बैठा रहता था। इसके कारण उसके पेटमें भयंकर वेदना और शरीरमें जलन होती थी। उसका शरीर केवल हड्डियोंका ढांचा-भर रह गया। आखिर उसमें उठनेकी भी शक्ति नहीं रही, और एक दिन वह मूर्च्छित होकर नीचे गिर पड़ा। ऐसे समय एक ग्वालिनने उसे दूध पिलाया और वह होशमें आया। परन्तु इतना कष्ट सहने पर भी उसे शान्ति नहीं मिली।

अन्न-ग्रहण

८. सिद्धार्थने देह-दमनका पूरा अनुभव कर लिया और देखा कि केवल देह-दमनसे कुछ मिलता नहीं है। उसने अनुभव किया कि यदि सत्यके मार्गकी खोज करनी है, तो शरीरकी शक्तिका नाश करके तो वह की ही नहीं जा सकती। इसलिए उसने फिरसे अन्न लेना शुरू कर दिया। सिद्धार्थकी उग्र तपस्याके कारण कुछ तपस्वी उसके शिष्य-जैसे बन गये थे। सिद्धार्थको अन्न लेते देख उनके मनमें उसके लिए हीनताकी भावना पैदा हो गई। यह सोचकर कि सिद्धार्थ योग-भ्रष्ट हो गया है, मोक्षके लिए योग्य नहीं रहा है, आदि-आदि

उन्होंने उसे छोड़ दिया। किन्तु सिद्धार्थको लोगों द्वारा अच्छा कहा जानेका कोई लोभ न था। उसे तो सत्य और सुखकी खोज करनी थी। यह सोच कर कि उसके बारेमें दूसरोंके विचार बदल जायेंगे, जो मार्ग उसे गलत मालूम हो, उस पर वह दृढ़ कैसे रह सकता था?

बोध-प्राप्ति

९. इस प्रकार सिद्धार्थको राज्य छोड़े छह वर्ष बीत गये। विषयोंकी इच्छा, काम आदि विकार, खाने-पीनेकी तृष्णा, आलस्य, कुशंका, गर्व, सम्मानकी इच्छा, कीर्तिकी इच्छा, आत्म-स्तुति, परनिंदा आदि अनेक प्रकारकी चित्तकी आसुरी वृत्तियोंके साथ इन वर्षोंमें उसे झगड़ना पड़ा। उसे परिपूर्ण विश्वास हो गया कि इस प्रकारके विकार ही मनुष्यके बड़े-से-बड़े शत्रु हैं। अन्तमें इन सब विकारोंको जीत कर उसने चित्तको अत्यन्त शुद्ध किया। जब चित्तकी सम्पूर्ण शुद्धि हो गई, तो उसके हृदयमें ज्ञानका प्रकाश हुआ। जन्म और मृत्यु क्या है, सुख और दुःख क्या है, दुःखका नाश हो सकता है या नहीं, हो सकता है तो किस प्रकार हो सकता है, आदि सब बातोंकी स्पष्टता हो गई, शंकाओंका निराकरण हो गया; जीवनका रहस्य समझमें आ गया; जिसकी खोज थी वह मिल गया; मनकी भ्रांतियां दूर हो गईं; चित्तके क्लेश मिट गये; जहां अशान्ति थी वहां शान्तिका साम्राज्य खड़ा हो गया। इस प्रकार सिद्धार्थ अज्ञानकी नींदसे जागकर बुद्ध बने। वैशाख सुदी पूनमके दिन उन्हें पहली बार ज्ञानकी स्फूर्ति हुई, इसी कारण वह दिन बुद्ध-जयन्तीका दिन माना जाता है। कई दिनों तक घूम-घूम कर उन्होंने अपने हृदयमें

स्फुरित हुए ज्ञान पर विचार किया। जब सारे संशय मिट गये और अपनेको प्राप्त हुए ज्ञानकी यथार्थ प्रतीति हो गई, तो संसारके प्रति मैत्री और कारुण्यकी उनकी वृत्तिने उन्हें प्रेरित किया कि वे अपने खोजे हुए सत्यकी जानकारी संसारको दें और उसे अपने भगीरथ प्रयत्नका लाभ पहुंचायें।[1]

---

१. बौद्ध ग्रंथोंमें लिखा है कि ब्रह्मदेवने उन्हें संसारका उद्धार करनेके लिए प्रेरित किया। किन्तु मैत्री, करुणा, मुदिता (पुण्यवान लोगोंको देखकर उत्पन्न होनेवाली आनन्द और पूज्य भावकी वृत्ति) और उपेक्षा (हठपूर्वक पापमें पड़े रहनेवालेके प्रति) इन चार भावनाओंको ही बुद्ध-धर्ममें ब्रह्म-विहार कहा है; इसलिए रूपकका त्याग करके ऊपर सादी भाषामें ही समझाया गया है। वैदिक ग्रंथोंमें चतुर्मुख ब्रह्माकी कल्पनाको अनेक प्रकारसे समझाया गया है, उसीका यह दूसरा रूप है। कवि सादी वस्तुको सादे ढंगसे न कहकर रूपकके रूपमें कहते हैं। समय पाकर रूपकका अर्थ लुप्त हो जाता है और सामान्य लोग रूपकको ही सत्य मानकर पूजने लगते हैं। नया कवि अपनी कल्पनाएं दौड़ाकर अपनी रुचिके अनुसार इस रूपकके अर्थ करता है, किन्तु रूपकको तो बनाये ही रखता है, और रूपकके रूपमें ही रूपककी पूजा करना छोड़ता नहीं। मुझमें काव्य-वृत्ति कम है, इस आरोपको स्वीकार करके भी मुझे कहना चाहिये कि यह परोक्ष पूजा मुझको अच्छी नहीं लगती। अनेक सीधे-सादे लोगोंको भ्रममें डालनेका यह एक सीधा रास्ता है। इस प्रत्यक्ष भौतिक मायाकी अपेक्षा शास्त्रियों और कवियोंकी वाणीकी माया विकट होती है।

सम्प्रदाय

मार्ग अष्टांगिक श्रेष्ठ, सत्योंमें श्रेष्ठ चार पद;
धर्मोंमें श्रेष्ठ वैराग्य, ज्ञानी श्रेष्ठ द्विपादमें।
संभाले वाणीको नित्य, मनसे संयमी रहे।
न करे देहसे पाप, वह पाये ऋषिमार्गको ।।[1]

अपनी तपश्चर्याके दिनोंमें बुद्ध अनेक तपस्वियोंके संसर्गमें आये थे। वे सब सुखकी खोजमें शरीरको अनेक प्रकारके कष्ट देकर उसका दमन कर रहे थे। बुद्धको यह रीति गलत मालूम हुई थी, इसलिए उन्होंने उन तपस्वियोंमें कुछको उस सत्यका उपदेश किया, जो उन्हें प्राप्त हुआ था। उनमें से जिन ब्राह्मणोंने बुद्धका इसलिए त्याग किया था कि वे अन्न खाने लगे थे, वे उनके पहले शिष्य बने।

प्रथम शिष्य

---

१. मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा।
विरागो सेट्ठो धम्मान द्विपदानं च चक्खुमा।।

वाचानुरक्खी मनसा सुसंवुतो
कायेन च अकुसलं न कयिरा।
एते तयो कम्मपथे विसोधये
आराधये मग्गमिसिप्पवेदितं।।
(धम्मपद)

२. बुद्धका स्वभाव ऐसा नहीं था कि जो शान्ति उन्हें प्राप्त हुई थी, उसका उपभोग वे अकेले करें। उन्होंने इतना प्रयत्न अपनी साढ़े तीन हाथकी देहको सुखी बनानेके लिए नहीं किया था। अतएव जितने वेगसे उन्होंने सत्यकी खोजके लिए राज्यका त्याग किया था, उतने ही वेगसे वे अपने सिद्धांतका प्रचार करने लगे। देखते-देखते हजारों मनुष्योंने उनकी शिष्यता स्वीकार की। कई मुमुक्षु उनका उपदेश सुनकर संसारसे विरक्त हो गये और उनके भिक्षु-संघमें सम्मिलित हुए। उनके सम्प्रदाय तथा संघमें ऊंच-नीच और अमीर-गरीबके बीच कोई भेद न था। वर्ण और कुलके अभिमानसे वे परे थे। जिस प्रकार मगधके राजा बिम्बिसार, सिद्धार्थके पिता शुद्धोदन, कोसलके राजा पसेनदि और अनाथपिण्डक आदि धनाढ्य गृहस्थोंने उनके धर्मको स्वीकार किया था, उसी प्रकार उपालि नाई, चुन्द लुहार, अंबापाली गणिका आदि कुछ पिछड़ी जातियोंके लोग भी उनके प्रमुख शिष्य थे। स्त्रियां भी उनका उपदेश सुनकर भिक्षुणी बननेके लिए तैयार हुईं। आरंभमें स्त्रियोंको भिक्षुणी बनानेके लिए बुद्ध राजी नहीं थे, किन्तु उनकी माता गौतमी और पत्नी यशोधराने भिक्षुणी बननेके लिए अति तीव्र आतुरता दिखाई, इस कारण उनके आग्रहके वश होकर बुद्धको उन्हें भी भिक्षुणी बननेकी छूट देनी पड़ी।

सम्प्रदायका विस्तार

३. ऐसा मालूम होता है कि बुद्धके समयमें मध्यम श्रेणीके लोगोंकी मनोदशा नीचे लिखे अनुसार थी। एक वर्ग ऐहिक सुखोंमें ही डूबा रहता था। यह समाजकी स्थिति[1] वर्ग मद्यपान और विलासमें ही जीवनकी सार्थकता समझता था। दूसरा एक वर्ग ऐहिक सुखोंकी कुछ अवगणना करता था, किन्तु स्वर्गमें ऐसे ही सुख प्राप्त करनेकी लालसासे देवोंको मूक प्राणियोंकी बलि देनेके काममें पड़ा हुआ था। तीसरा एक वर्ग इससे बिलकुल भिन्न मार्ग पर चलकर इस हद तक देह-दमन करनेमें लगा हुआ था कि उससे शरीर ही नष्ट हो जाय।

४. बुद्धने सिखाया कि ये तीनों मार्ग अज्ञानके सूचक हैं। एक ओर संसारके और स्वर्गके सुखकी तृष्णा और दूसरी ओर देह-दमन द्वारा अपना नाश करनेकी मध्यम मार्ग तृष्णा, इन दोनों छोरों पर खड़ी इच्छाओंका त्याग करके मध्यम मार्गको अपनानेका उपदेश उन्होंने दिया। उनका मत था कि इस मध्यम मार्गसे दुःखोंका नाश होता है।

५. मध्यम मार्गका अर्थ है, चार आर्य सत्योंका ज्ञान। आर्य सत्य ये चार आर्य सत्य नीचे लिखे अनुसार हैं:

(१) जन्म, जरा, व्याधि, मरण, अप्रिय वस्तुका योग और प्रिय वस्तुका वियोग, ये पांच दुःख-रूपी वृक्षकी डालियां हैं। ये पांच ही वास्तविक दुःख हैं, अर्थात् अनिवार्य हैं; ये

---

१. देखिये, आगे टिप्पणी–४।

६. सम्यक् प्रयत्न — अर्थात् कुशल पुरुषार्थ ।

७. सम्यक् स्मृति — अर्थात् मैं क्या करता हूं, क्यों बोलता हूं, क्या विचार करता हूं, इसका निरंतर भान ।

८. सम्यक् समाधि — अर्थात् अपने कर्ममें एकाग्रता, अपने निश्चयमें एकाग्रता, अपने पुरुषार्थमें एकाग्रता, अपनी भावनामें एकाग्रता ।[1]

यह अष्टांग मार्ग बुद्धका चौथा आर्य सत्य है ।

इसे मध्यम मार्ग कहा गया है, क्योंकि इसमें अशुभ प्रवृत्तियोंका स्वीकार नहीं है और शुभ प्रवृत्तियोंका त्याग नहीं है । जो अशुभ अथवा शुभ और अशुभ दोनों प्रवृत्तियोंमें रस लेता है वह एक छोर पर है; जो दोनों प्रवृत्तियोंसे दूर रहता है वह दूसरे छोर पर है । बुद्धकी रायमें शुभका स्वीकार और अशुभका त्याग इष्ट है ।

९. जो बुद्धको अपने मार्गदर्शकके रूपमें स्वीकार करता है, उनके द्वारा उपदेशित धर्मको मानता है और भिक्षु-संघका सत्संग करता है, वह बौद्ध कहलाता है ।

बुद्ध-शरण-त्रय

'बुद्धं सरणं गच्छामि । धम्मं सरणं गच्छामि । संघं सरणं गच्छामि ।' — इन तीन शरणोंकी प्रतिज्ञा करके बुद्ध-धर्ममें प्रवेश प्राप्त किया जाता है ।

---

१. भावनामें एकाग्रताका अर्थ कभी मैत्री, कभी द्वेष; कभी अहिंसा, कभी हिंसा; कभी ज्ञान, कभी अज्ञान; कभी वैराग्य, कभी विषयेच्छा नहीं है। बल्कि निरंतर मैत्री, अहिंसा, ज्ञान और वैराग्यमें स्थिति ही समाधि है। देखिये, गीता — अध्याय १३, श्लोक ८ से ११ : ज्ञानके लक्षण।

७. मनुष्यको अपनी न्यूनाधिक शक्तिके अनुसार इन चार सत्योंमें मन-कर्म-वचनसे निष्ठा हो और अष्टांग मार्गकी साधना करते-करते वह बुद्ध-दशाको प्राप्त हो, इस हेतुकी अनुकूलताको ध्यानमें रखकर बुद्धने धर्मका उपदेश किया था। उन्होंने शिष्योंके तीन भेद किये हैं: गृहस्थ, उपासक और भिक्षु।

बुद्ध-धर्म

८. गृहस्थको नीचे लिखी पांच अशुभ प्रवृत्तियोंसे दूर रहना चाहिये: (१) प्राणीकी हिंसा, (२) चोरी, (३) व्यभिचार, (४) असत्य और (५) शराब आदिके व्यसन।

इसके अलावा उसे नीचे लिखी शुभ प्रवृत्तियोंमें तत्पर रहना चाहिये: (१) सत्संग, (२) गुरु, माता, पिता और परिवारकी सेवा, (३) पुण्यमार्गसे द्रव्य-संचय, (४) सन्मार्गमें मनकी दृढ़ता, (५) विद्या और कलाकी प्राप्ति, (६) समयोचित सत्य, प्रिय और हितकर भाषण, (७) व्यवस्थितता, (८) दान, (९) सगे-सम्बन्धियोंके साथ उपकार, (१०) धर्माचरण, (११) नम्रता, सन्तोष, कृतज्ञता और सहनशीलताके गुणोंकी प्राप्ति और (१२) तपश्चर्या, ब्रह्मचर्य आदिके मार्गसे आगे बढ़कर चार आर्य सत्योंके साक्षात्कारके साथ मोक्षकी प्राप्ति।

९. उपासकको गृहस्थके धर्मोंके अतिरिक्त महीनेमें चार दिन नीचे लिखे व्रतोंका पालन करना चाहिये: (१) ब्रह्मचर्य, (२) दोपहरके बाद भोजन न करना, (३) नृत्य, गीत, फूल, इत्र आदि विलासोंका त्याग करना और (४) ऊंचे और मोटे बिछौनोंका त्याग। इन व्रतोंको उपोसथ कहते हैं।

उपासकके धर्म

१०. भिक्षु दो प्रकारके हैं: श्रामणेर और भिक्षु। बीस वर्षसे कम उमरके श्रामणेर कहलाते हैं। ये किसी भिक्षुके अधीन ही रहते हैं; इनमें और भिक्षुमें यही फरक है।

भिक्षुके धर्म

भिक्षा पर आजीविका चलाने, पेड़के नीचे रहने, फटे कपड़े इकट्ठा करके उनसे शरीर ढांकने और औषधि आदिके बिना काम चला लेनेकी भिक्षुकी तैयारी होनी चाहिये। उसे सोने-चांदीका त्याग करना चाहिये और निरंतर चित्तके दमनका अभ्यास करते रहना चाहिये।[1]

११. बुद्धके सम्प्रदायकी विशेषता यह है कि वे साधारण नीति-प्रिय मनुष्यकी बुद्धिको जंचनेवाले विषयों पर ही श्रद्धा रखनेको कहते हैं।

सम्प्रदायकी विशेषता

अपने ही बलसे बुद्धिको सत्य-रूप प्रतीत न होनेवाले किसी देव, सिद्धांत, विधि अथवा व्रतमें श्रद्धा रखनेकी बात वे नहीं कहते। उन्होंने अपने सम्प्रदायकी नींव किसी कल्पना अथवा किसी वाद पर खड़ी नहीं की। किन्तु जैसा कि सब सम्प्रदायोंमें होता है, सत्यकी अपेक्षा सम्प्रदायका विस्तार करनेकी

---

१. भर्तृहरिके नीचे लिखे श्लोकमें सदाचारके जो नियम सूचित किये गये हैं वे ऐसे लगते हैं, मानो बौद्ध-नियमोंको इकट्ठा करके ही लिखे गये हों।

> प्राणाघातान्निवृत्तिः[1] परधनहरणे संयमः[2] सत्यवाक्यम्[3]
> काले शक्त्या प्रदानं[4] युवतिजनकथामूकभावः परेषाम्[5]।
> तृष्णास्रोतो विभङ्गो[6] गुरुषु च विनयः[7] सर्वभूतानुकम्पा[8]
> सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः॥

इच्छावाले लोगोंने बादमें ये सारी चीजें बुद्ध-धर्ममें भी दाखिल कर ही दी हैं।

हिन्दू और जैन धर्मकी तरह बौद्ध धर्म भी पुनर्जन्मके विश्वास पर खड़ा है। अनेक जन्मों तक प्रयत्न करते-करते कोई भी जीव बुद्ध-दशाको प्राप्त कर सकता है। जो जीव बुद्ध बननेकी इच्छासे प्रयत्न करता है, उसे वे बोधिसत्त्व कहते हैं। यह प्रयत्न करनेकी रीति इस प्रकार है: बुद्ध बननेसे पहले अनेक महान गुणोंको सिद्ध करना पड़ता है। बुद्धमें अहिंसा, करुणा, दया, उदारता, ज्ञानयोग और कर्मकी कुशलता, शौर्य, पराक्रम, तेज, क्षमा आदि सब श्रेष्ठ गुणोंका विकास होना चाहिये। जब तक एकाध सद्गुणकी भी कमी रहे, तब तक बुद्ध-दशा प्राप्त नहीं होती। तात्पर्य यह कि तब तक उसमें पूर्ण ज्ञान स्थिर नहीं होता, वासनाओं पर विजय नहीं मिलती और मोहका नाश नहीं होता। एक ही जीवनमें इन सब गुणोंका विकास नहीं किया जा सकता। किन्तु बुद्ध बननेकी इच्छा रखनेवाला साधक एक-एक जन्ममें एक-एक गुणकी पारंगतता प्राप्त करे, तो जन्मान्तरमें वह बुद्ध बननेकी योग्यता प्राप्त कर सकता है। बौद्धोंका विश्वास है कि गौतम बुद्धने इसी प्रकार अनेक जन्म तक साधना करके बुद्धत्व प्राप्त किया था। अपने धर्मके अनुयायियोंके मन पर इस विचारको ठसानेके लिए एक बोधिसत्त्वकी कल्पना करके जन्म-जन्मान्तरकी उसकी कथायें रच दी गई हैं। मतलब यह कि ये कथायें कवियोंकी बनाई हैं। किन्तु उनकी रचना इस तरह की गई है कि ये मानवी मनको प्रभावित कर सकें। ये कथायें जातक कथायें कहलाती

हैं। साधारण लोग इन कथाओंको बुद्धके पूर्वजन्मकी कथाओंके रूपमें मानते हैं। असलमें यह एक भोला विश्वास ही है। लेकिन इन कथाओंमें से कई कथायें बहुत बोधप्रद हैं।

उपदेश

मत करो एक भी पाप, आपही सन्मार्गके रहो;
सदा निज चित्तको शोधो, यही है बुद्धोंका शासन।[1]

आत्म-प्रतीति ही प्रमाण

बुद्धके उपदेशोंमें चारित्र्य, चित्तशुद्धि और दैवी सम्पत्तिका विकास सूत्र रूपमें निहित है। किन्तु इन सबके समर्थनमें वे स्वर्गका लोभ, नरकका डर, ब्रह्मका आनन्द, जन्म-मृत्युका त्रास, भव-सागर पार होनेकी बात अथवा दूसरी किसी भी आशा या डरका सहारा लेना नहीं चाहते। वे शास्त्रोंके आधार भी देना नहीं चाहते। ऐसा नहीं है कि शास्त्र, स्वर्ग-नरक, आत्मा, जन्म-मृत्यु आदि उन्हें स्वीकार न हों, परन्तु बुद्धने अपने उपदेशोंकी रचना इनके सहारे नहीं की। वे जो बातें कहना चाहते हैं, उनकी कीमत स्वयंसिद्ध है, और वे ऐसा कहते जान पड़ते हैं कि ये बातें मनुष्यको अपने विचारसे ही समझमें आ जाती हैं। वे कहते हैं:

"हे लोगो, मैं जो-कुछ कहूं उसे परम्परागत समझकर सच मत मानना। तुम्हारी पूर्वपरम्पराके अनुसार है, ऐसा

---

1. सब्बपापस्स अकरणं कुसलस्स उपसंपदा।
   सचित्तपरियोदपनं एतं बुद्धानसासनम्॥

(धम्मपद)

समझकर भी सच मत मानना । यह सोचकर कि ऐसा है होगा, सच मत मानना । तर्कसिद्ध जानकर सच मत मानना। लौकिक न्याय मानकर सच मत मानना । सुन्दर लगता है इसलिए सच मत मानना । तुम्हारी श्रद्धाका पोषण करनेवाला है, यह जानकर सच मत मानना । मैं प्रसिद्ध साधु हूं, पूज्य हूं, यह सोचकर सच मत मानना । किन्तु तुम्हें अपनी विवेक-बुद्धिसे मेरा उपदेश सच मालूम हो, तभी तुम उसे स्वीकार करना ।"

दिशा-वन्दन

२. उस जमानेमें कुछ लोग यह नियम पालते थे कि सवेरे स्नान करनेके बाद पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊर्ध्व और अधः इन छह दिशाओंका वन्दन करना चाहिये । बुद्धने इन छह दिशाओंका वन्दन नीचे लिखे अनुसार सूचित किया है:

"स्नान करके पवित्र होना ही पर्याप्त नहीं है । छह दिशाओंको नमस्कार करनेवालेका कर्तव्य है कि वह नीचे लिखी चौदह बातोंका त्याग करे:

(१) प्राणघात, चोरी, व्यभिचार और असत्य भाषण ये चार दुःख-रूप कर्म;

(२) स्वच्छंदता, द्वेष, भय और मोह ये चार पापके कारण, और

(३) मद्यपान, रात्रि-भ्रमण, नाटक-तमाशा, व्यसन, जुआ, कुसंगति और आलस्य ये छह सम्पत्ति-नाशके द्वार ।

इस प्रकार पवित्र बनकर उसे माता-पिताको पूर्व दिशा समझकर उनकी पूजा करनी चाहिये । उनकी पूजाका अर्थ

है, उनका काम और पोषण करना। कुलमें परम्परासे होते आये सत्कर्म करते रहना, उनकी सम्पत्तिका समुचित बंटवारा करना और मरे हुए भाई-बहनोंके हिस्सेको दान-धर्ममें खर्च करना।

गुरुको दक्षिण दिशा समझकर उनके आने पर खड़े होना, बीमार पड़ने पर शुश्रूषा करना, सिखाने पर श्रद्धापूर्वक समझ लेना, प्रसंगानुसार उनका काम कर देना और उनकी दी हुई विद्याको याद रखकर इस दिशाको पूजा करनी चाहिये।

पश्चिम दिशा स्त्रीको समझनी चाहिये। उसका सम्मान करनेसे, अपमान न होने देनेसे, पत्नीव्रतका पालन करनेसे, घरका काम-काज उसे सौंप देनेसे और आवश्यक वस्त्र आदिकी व्यवस्था कर देनेसे उसकी पूजा होती है।

मित्र-मंडली और सगे-सम्बन्धी उत्तर दिशा हैं। उन्हें देने योग्य चीजें भेंट-स्वरूप देनेसे, उनके साथ मीठा व्यवहार रखनेसे, उनके लिए उपयोगी बननेसे, उनके साथ समानताका बरताव करनेसे और निष्कपट व्यवहार रखनेसे इस दिशाकी ठीक-ठीक पूजा होती है।

अधोदिशाका वन्दन सेवकको उसकी शक्तिके अनुसार ही काम सौंपनेसे, समय पर और पर्याप्त वेतन देनेसे, बीमारीमें उसकी सेवा-टहल करनेसे, उसे अच्छा भोजन देनेसे और प्रसंगानुसार इनाम देनेसे होता है।

ऊर्ध्व दिशाकी पूजा मन, वचन और कर्मसे साधु-सन्तोंका सम्मान करनेसे, भिक्षामें बाधा न डालनेसे और योग्य वस्तुके दानसे होती है।

कर सकेंगे। मैंने सब प्रकारके मादक पदार्थोंका त्याग किया है; असमयके भोजनका त्याग किया है; मैं मध्याह्नसे पहले एक ही बार भोजन करूंगा। आज मैं नृत्य, गीत, वाद्य, माला, गंध, आभूषण आदिका त्याग करूंगा। आज मैं बिलकुल सादे बिछौने पर सोऊंगा। इन आठ नियमोंका पालन करके मैं महात्मा बुद्ध-पुरुषका अनुकरण करनेवाला बनता हूं।"

५. वधिक, चोर, सेठ, माता, बहन, मित्र और दासी ऐसी सात प्रकारकी पत्नियां होती हैं। जिसके अंतःकरणमें पतिके लिए प्रेम ही न हो, जिसे पैसा ही प्यारा लगता हो, वह स्त्री वधिक (हत्यारे) के समान है। जो पतिके पैसे चुराकर अपने लिए धन बटोरती है, वह चोरके समान है।

सात प्रकारकी पत्नियां

जो काम नहीं करती परन्तु बहुत खाती है, पतिको गाली देनेमें कोई कसर नहीं रखती और पतिकी मेहनतकी कदर नहीं करती, वह सेठके समान है। जो पत्नी इकलौते पुत्रकी भांति पतिकी सार-संभाल करती है और उसकी सम्पत्तिकी रक्षा करती है, वह माताके समान है। जो छोटी बहनकी तरह पतिका सम्मान करती है और उसके कहे अनुसार बरतती है, वह बहनके समान है। लम्बे समयके बाद मिलनेवाले किसी मित्रकी तरह जो पतिको देखते ही अत्यन्त हर्षित हो जाती है, वह कुलीन और शीलवती पत्नी मित्रके समान है। पतिके चिढ़ने पर भी जो चिढ़ती नहीं, पतिके बारेमें मनमें कभी बुरे विचार तक लाती नहीं, वह पत्नी दासीके समान है।

सब वर्णोंकी समानता

६. बुद्ध वर्णके अभिमानको नहीं मानते। उनके अनुसार सब वर्ण मोक्षके अधिकारी हैं। वर्णकी श्रेष्ठता ठहरानेका कोई स्वतःसिद्ध प्रमाण नहीं। यदि क्षत्रिय आदि वर्ण पाप करें, तो वे नरकमें जायं, और ब्राह्मण आदि पाप करें, तो क्या वे न जायं? यदि ब्राह्मण पुण्य करे, तो वह स्वर्गमें जाय, और क्षत्रिय आदि करें, तो वे न जायं? ब्राह्मण राग-द्वेष आदिसे रहित होकर मित्रता कर सकता है, तो क्या क्षत्रिय आदि नहीं कर सकते? स्पष्ट है कि इन सब विषयोंमें चारों वर्णोंका अधिकार समान है।[1]

यदि एक ब्राह्मण निरक्षर हो और दूसरा विद्वान हो, तो यज्ञ आदिमें पहला आमंत्रण किसे दिया जायेगा? आप कहेंगे, विद्वानको; तो विद्वत्ता पूजनीय हुई, जाति नहीं।

किन्तु यदि वह विद्वान ब्राह्मण शीलरहित और दुराचारी हो तथा निरक्षर ब्राह्मण अत्यन्त शीलवान हो, तो पूज्य किसे मानेंगे? उत्तर स्पष्ट है, शीलवानको।

इस प्रकार जातिकी तुलनामें विद्वत्ता श्रेष्ठ रही और विद्वत्ताकी तुलनामें शील श्रेष्ठ रहा। और, उत्तम शील तो सब वर्णोंके मनुष्य प्राप्त कर सकते हैं। अतएव यह सिद्ध होता है कि जिसका शील उत्तम है, वही सब वर्णोंमें श्रेष्ठ है।

१. तुलना कीजिये:
अहिंसा सत्यम् अस्तेयम् अकाम-क्रोध-लोभता।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः॥
(महाभारत)

बुद्ध भगवानने ब्राह्मणकी व्याख्या इस प्रकार की है: "मैं उसीको ब्राह्मण कहता हूं, जो संसारके बंधनोंको काटकर, संसारके दुःखोंसे डरता नहीं, जिसे किसी विषयमें आसक्ति नहीं, दूसरे मारें, गालियां दें, बांधकर रखें, तो भी जो इस सबको सहन करता है और क्षमा ही जिसका बल है; मैं उसीको ब्राह्मण कहता हूं, जो कमलके पत्ते पर पड़ी पानीकी बूंदकी तरह इस संसारके विषय-सुखोंसे अलिप्त रहता है।"[1]

७. मनोरंजक और बुद्धिको उपयुक्त जंचनेवाले दृष्टांत और कारण देकर उपदेश करनेकी बुद्धकी पद्धति अनुपम थी। यहां हम इसका एक ही दृष्टान्त देंगे। बुद्धके

श्रेष्ठ यज्ञ

समयमें यज्ञमें प्राणियोंका वध करनेकी प्रथा बहुत ही प्रचलित थी। यज्ञमें होनेवाली हिंसाको बन्द करानेका संघर्ष हिन्दुस्तानमें बुद्धके समयसे चला आ रहा है। एक बार कूटदन्त नामक एक ब्राह्मण बुद्धके पास इस विषयकी चर्चा करने आया। उसने बुद्धसे पूछा: "श्रेष्ठ यज्ञ कौनसा है, और उसकी विधि क्या है?"

बुद्ध बोले:

"प्राचीन कालमें महाविजित नामका एक बड़ा राजा हो गया। एक दिन उसने सोचा, मेरे पास विपुल सम्पत्ति है। यदि मैं किसी महायज्ञमें इसे खर्च करूं, तो मुझे बहुत पुण्य मिले। उसने अपना यह विचार अपने पुरोहितसे कहा।

१. देखिये, आगे टिप्पणी – १।

"पुरोहित बोला : 'महाराज, आजकल आपके राज्यमें शान्ति नहीं है । गांवों और शहरोंमें डाके पड़ते हैं; लोगोंको चोरोंसे बहुत कष्ट है । ऐसी स्थितिमें लोगों पर (यज्ञके लिए) कर लगानेसे आप अपने कर्तव्यसे विमुख होंगे । शायद आप यह सोचेंगे कि डाकुओं और चोरोंको पकड़कर फांसी दे देने, कैद करनेसे अथवा देशनिकाला दे देनेसे शान्ति स्थापित की जा सकेगी; किन्तु यह भूल है । इस प्रकार राज्यकी अराजकता नष्ट नहीं होगी; क्योंकि जो इस उपायसे वशमें नहीं आयेंगे वे फिर विद्रोह करेंगे ।

"'अब इन उपद्रवोंको शान्त करनेका सच्चा उपाय सुनाता हूं । हमारे राज्यमें जो लोग खेती करना चाहते हैं, उन्हें आपको बीज आदि सामग्री देनी चाहिये; जो व्यापार करना चाहते हैं, उन्हें पूंजी देनी चाहिये; और जो सरकारी नौकरी करना चाहते हैं, उन्हें उचित वेतन देकर योग्य काम पर नियुक्त करना चाहिये । इस प्रकार सब लोगोंको उनके लायक काम मिल जानेसे वे उपद्रव नहीं करेंगे । समय पर कर मिलनेसे आपकी तिजोरी भरी-भरी रहेगी । लूटपाटका डर न रहनेसे लोग बाल-बच्चोंकी इच्छायें पूरी करके आनंदसे घरोंके दरवाजे खुले रखकर आनन्दसे सो सकेंगे ।'

"राजाको पुरोहितका विचार बहुत ही अच्छा लगा । उसने तुरन्त ही वैसी व्यवस्था कर दी । इसके कारण थोड़े ही समयमें राज्यकी समृद्धि बढ़ गई । लोग बड़े आनन्दसे रहने लगे ।

"इस पर राजाने फिर पुरोहितको बुलाया और कहा: हे पुरोहित, अब मैं महायज्ञ करना चाहता हूं, इसके लिए मुझे उचित सलाह दो।'

"पुरोहित बोला: 'महायज्ञ करनेका निश्चय करनेसे पहले प्रजाकी अनुमति प्राप्त करना उचित होगा। अतएव घोषणा-पत्र चिपका कर हम जनताकी सम्मति प्राप्त करें तो ठीक हो।'

"पुरोहितकी सलाहके अनुसार राजाने घोषणा-पत्र लगवा दिये और जनतासे यह निवेदन किया कि वह अपनी सम्मति निर्भयता और स्पष्टतापूर्वक प्रकट करे। सबने अनुकूल मत दिया।

"तब पुरोहितने यज्ञकी सारी तैयारी करके राजासे कहा: 'महाराज, यज्ञ करते समय आपको मनमें यह विचार तक नहीं उठने देना चाहिये कि इसमें मेरा कितना धन खर्च हो जायगा; यज्ञके चलते भी आपको यह नहीं सोचना चाहिये कि बहुत खर्च हो रहा है, और यज्ञ समाप्त होनेके बाद भी मनमें यह विचार नहीं उठने देना है कि खर्च बहुत हो गया।

"'आपके यज्ञमें बुरे-भले सब प्रकारके लोग आयेंगे। किन्तु आपको तो केवल सत्पुरुषों पर ही दृष्टि रखकर यज्ञ करना चाहिये और चित्तको प्रसन्न रखना चाहिये।'

"इस राजाके यज्ञमें गाय, बकरे, भेड़ इत्यादि प्राणियोंका वध नहीं किया गया। पेड़ उखाड़कर उनके स्तंभ खड़े नहीं किये गये। नौकरों और मजदूरोंको जबरदस्ती काम पर नहीं लगाया गया। जिन्होंने चाहा, उन्होंने काम किया; जिनको

न जंचा, उन्होंने नहीं किया। घी, तेल, मक्खन, दही, मधु
और गुड़से ही यज्ञ पूरा किया गया।

"इसके बाद राज्यके धनी-मानी लोग बड़े-बड़े उपहार
लाये। किन्तु राजाने उनसे कहा: 'सज्जनो, मुझे आपके
उपहारोंकी आवश्यकता नहीं। धार्मिक कर द्वारा इकट्ठा किया
गया बहुतसा धन मेरे पास है। आप उसमें से कुछ ले जाना
चाहें, तो खुशीसे ले जाइये।'

"इस प्रकार जब राजाने उपहार स्वीकार नहीं किये
तो उन धनी-मानी लोगोंने महाविजितकी यज्ञशालाके आसपास
चारों दिशाओंमें अंधों, लूलों आदि अनाथ लोगोंके लिए
धर्मशालायें बनवानेमें और गरीबोंको दान देनेमें अपना बहुत
धन खर्च कर दिया।"

यह बात सुनकर कूटदन्त और दूसरे ब्राह्मण बोले:
"बहुत ही सुन्दर यज्ञ! बहुत ही सुन्दर यज्ञ!"

इसके बाद बुद्धने कूटदन्तको अपने धर्मका उपदेश दिया।
उसे सुनकर वह बुद्धका उपासक बन गया और बोला: "आज
मैं सात सौ बैलों, सात सौ बछड़ों, सात सौ बछड़ियों, सात सौ
बकरों और सात सौ भेड़ोंको यज्ञ-स्तम्भसे छोड़ देता हूं। मैं उन्हें
जीवन-दान देता हूं। हरी घास खाकर और ठंडा पानी पीकर
वे शीतल हवामें आनन्दसे घूमें-फिरें।"

राजाकी समृद्धिके लिए

८. एक बार राजा अजातशत्रुने बुद्धके पास अपने
अमात्यके साथ यह कहला भेजा: "मैं
वैशालीके वज्जी लोगों पर आक्रमण करना
चाहता हूं। अतएव इसके बारेमें आप अपनी
सम्मति दीजिये।"

यह सुनकर बुद्धने आनन्द नामके अपने शिष्यकी ओर ड़कर पूछा: आनन्द, क्या वज्जी लोग बार-बार इकट्ठा कर राज-काजका विचार करते हैं?

आनन्द: हां, भगवन्!

बुद्ध: क्या इकट्ठा होनेके बाद वापस घर लौटने तक नमें एकसी एकता बनी रहती है?

आनन्द: मैंने ऐसा सुना तो है।

बुद्ध: वे लोग अपने कानूनोंका भंग तो नहीं करते? अथवा वे उनका मनचाहा अर्थ तो नहीं करते?

आनन्द: जी नहीं; मैंने सुना है कि वे लोग अत्यन्त नियमपूर्वक व्यवहार करनेवाले हैं।

बुद्ध: वज्जी लोग राज-काजमें पड़े हुए वृद्ध पुरुषोंका सम्मान करके उनकी सलाह तो लेते हैं न?

आनन्द: जी हां; वहां उनका बहुत सम्मान किया जाता है।

बुद्ध: वे लोग अपनी विवाहित अथवा अविवाहित स्त्रियों पर अत्याचार तो नहीं करते?

आनन्द: जी नहीं; वहां स्त्रियोंकी बड़ी ऊंची प्रतिष्ठा है।

बुद्ध: वज्जी लोग नगरके अथवा नगरसे बाहरके देव-मंदिरोंकी सार-संभाल तो करते हैं न?

आनन्द: हां, भगवन्!

बुद्ध: वे लोग सन्त पुरुषोंका आदर-सत्कार करते हैं?

आनन्द: जी हां।

यह सुनकर बुद्धने अमात्यसे कहा: "मैंने वैशालीके लोगोंको ये सात नियम दिये थे। जब तक इन नियमोंका पालन होता रहेगा, तब तक उनकी समृद्धि ही होगी, अवनति हो नहीं सकती।" अमात्यने अजातशत्रुको यही सलाह दी कि वह वज्जी लोगोंको न सताये।

अभ्युन्नतिके नियम

९. अमात्यके चले जाने पर बुद्धने अपने भिक्षुओंको इकट्ठा करके उन्हें नीचे लिखे अनुसार सिखावन दी:

"भिक्षुओ, मैं तुम्हें अभ्युन्नतिके सात नियम समझाता हूं। उन्हें ध्यानपूर्वक सुनो: (१) जब तक तुम इकट्ठा रहकर संघके काम करोगे, (२) जब तक तुममें एकता रहेगी, (३) जब तक तुम संघके नियमोंका भंग नहीं करोगे, (४) जब तक तुम वृद्ध और विद्वान पुरुषोंका सम्मान करोगे, (५) जब तक तुम तृष्णाओंके वश नहीं रहोगे, (६) जब तक तुम एकान्तप्रिय रहोगे, और (७) जब तक तुम अपने साथियोंको सुखी बनानेकी चिंता रखनेवाले बने रहोगे, तब तक तुम्हारी उन्नति ही होगी, अवनति नहीं होगी।

"भिक्षुओ, मैं तुम्हें अभ्युन्नतिके दूसरे सात नियम और सुनाता हूं। तुम उन्हें सावधानीसे सुनो: (१) घर-गृहस्थीके कामोंमें आनन्दका अनुभव मत करना; (२) सारा समय बातचीतमें बितानेमें आनन्दका अनुभव मत करना; (३) नींदमें समय बिताकर आनन्दका अनुभव मत करना; (४) सारा समय साथियोंके बीच ही बिता देनेमें आनन्दका अनुभव मत करना; (५) दुष्ट वासनाओंके वश मत होना; (६) दुष्टोंकी संगति

मत पड़ना; और (७) अल्प समाधिके लाभसे कृतकृत्यताका अनुभव मत करना। जब तक तुम इन सात नियमोंका पालन करोगे, तब तक तुम्हारी उन्नति ही होगी, अवनति नहीं।

"भिक्षुओ, अभ्युन्नतिके दूसरे सात नियम और कहता हूं। तुम उन्हें ध्यानसे सुनो: (१) श्रद्धालु बनो, (२) पाप-कर्मसे लज्जाका अनुभव करो, (३) लोकापवादसे डरो, (४) विद्वान् बनो, (५) सत्कर्मोंके लिए उत्साही रहो, (६) स्मृति जाग्रत रखो, और (७) प्रज्ञावान बनो। जब तक तुम इन सात नियमोंका पालन करोगे, तब तक तुम्हारी उन्नति ही होगी, अवनति नहीं।

"भिक्षुओ, तुम्हें अभ्युन्नतिके सात और नियम सुनाता हूं। तुम उन पर ध्यान दो। सदा ज्ञानके सात अंगोंकी भावना रखो। ये सात अंग यों हैं: (१) स्मृति, (२) प्रज्ञा, (३) वीर्य, (४) कीर्ति, (५) प्रश्रब्धि, (६) समाधि, और (७) उपेक्षा।"[१]

---

१. (१) स्मृतिका अर्थ है, सतत जागृति, सावधानता: मैं क्या करता हूं, क्या सोचता हूं, मनमें किस प्रकारकी भावनायें, इच्छायें आदि उठती है, आसपास क्या हो रहा है, इन सबके प्रति जागरूकता।

(२) प्रज्ञाका अर्थ है, मनोवृत्तियोंका पृथक्करण करनेकी शक्ति: आनन्द, शोक, सुख, दुःख, जड़ता, उत्साह, धैर्य, भय, क्रोध आदि भावनाओंके उठने पर अथवा उठनेके बाद उन्हें पहचानकर वे क्यों उठती है और फिर किस तरह शान्त होती हैं, उनके मूलमें कौनसी वासनायें आदि होती है, इसका पृथक्करण करनेकी शक्ति ही प्रज्ञा है। इसे धर्म-प्रविचय भी कहते हैं।

उपदेशका प्रभाव

१०. सुननेवालों पर बुद्धके उपदेशका प्रभाव तत्काल पड़ता था। ढंकी हुई वस्तुको खोलकर दिखानेकी तरह अथवा जिस तरह अंधेरेमें दीया वस्तुओंको प्रकाशित कर देता है, उसी तरह बुद्धके उपदेशसे श्रोताओंको सत्यका प्रकाश प्राप्त होता था। उनके उपदेशसे लुटेरे भी सुधर जाते थे। उनके वचनोंसे अनेक व्यक्तियोंके हृदयोंमें वैराग्यके वाण लगते थे और वे सुख-सम्पत्ति छोड़कर उनके भिक्षु-संघमें भरती हो जाते थे।

कुछ शिष्य

११. उनके उपदेशसे कुछ स्त्री-पुरुषोंके चरित्र कैसे बने थे, इसका ठीक पता एक-दो कथाओंसे चल सकेगा।

१२. पूर्ण नामके एक शिष्यको संक्षेपमें अपना धर्मोपदेश देनेके बाद बुद्धने उससे पूछा: पूर्ण, अब तू किस प्रदेशमें जायेगा?

पूर्ण: भगवन्, आपका उपदेश ग्रहण करनेके बाद अब मैं सुनापरन्त प्रान्तमें जाऊंगा।

बुद्ध: पूर्ण, सुनापरन्त प्रान्तके लोग बहुत कठोर हैं, बड़े क्रूर हैं। वे जब तुझे गालियां देंगे, तेरी निंदा करेंगे, तब तुझे कैसा लगेगा?

---

(३) [illegible] अर्थ है, [illegible]।

(४) [illegible] अर्थ है, [illegible] आनन्द।

(५) [illegible] अर्थ है, [illegible]।

(६) [illegible] अर्थ है, [illegible]।

(७) [illegible]

पूर्ण: हे भगवन्, उस समय में यह मानूंगा कि वे लोग बहुत अच्छे हैं, क्योंकि उन्होंने मुझ पर हाथ नहीं चलाये।

बुद्ध: और अगर वे तुझ पर हाथ चलायें तो?

पूर्ण: मैं यही समझूंगा कि उन्होंने मुझे पत्थरोंसे नहीं मारा, इसलिए वे लोग अच्छे ही हैं।

बुद्ध: और अगर पत्थरोंसे मारें तो?

पूर्ण: मैं यही समझूंगा कि उन्होंने मुझे डंडोसे नही पीटा, इसलिए वे बहुत अच्छे लोग हैं।

बुद्ध: और अगर वे डंडोसे पीटें तो?

पूर्ण: मैं समझूंगा कि वे भले हैं, क्योंकि उन्होंने शस्त्र-प्रहार नहीं किया।

बुद्ध: और अगर शस्त्र-प्रहार करें तो?

पूर्ण: मैं समझूंगा कि वे भले हैं, क्योंकि उन्होंने मुझे जानसे नहीं मारा।

बुद्ध: और जानसे मार डालें तो?

पूर्ण: भगवन्, कुछ भिक्षु इस शरीरसे दिक आकर, ऊबकर, आत्महत्या करते हैं। यदि सुनापरन्तके निवासी ऐसे शरीरका नाश करेंगे, तो मैं मानूंगा कि उन्होंने मुझ पर उपकार किया और इसीलिए मैं यह समझूंगा कि वे लोग बहुत ही भले हैं।

बुद्ध: शाबाश! पूर्ण, शाबाश! इस प्रकारके शम-दमसे मुक्त ... कारण तू सुनापरन्त प्रदेशमें धर्मोपदेश करनेमें

१३. दुष्टको दंड देना एक प्रकारसे उसकी दुष्टताका प्रतिकार करना है। दुष्टताको धैर्य और शौर्यपूर्वक सहन करना और सहन करते हुए भी दुष्टताका विरोध अवश्य करना, दूसरे प्रकारका प्रतिकार है। किन्तु दुष्टकी दुष्टताके प्रयोगमें जितनी कमी रहे, उसे उतना शुभचिह्न समझकर उससे मित्रता ही करना और मित्रभावसे ही उसे सुधारनेका प्रयत्न करना, यह दुष्टताकी जड़को मिटानेवाला तीसरा प्रकार है। मित्र-भावनाकी और अहिंसाकी कितनी ऊंची सीमा तक पहुंचनेका पूर्णका प्रयत्न रहा होगा, इसकी कल्पना करने योग्य है।[1]

नकुल-माताकी समझदारी

१४. नकुल-माताके नामसे वर्णित बुद्धकी एक शिष्याके विवेक-ज्ञानका पता अपने पतिकी गंभीर बीमारीके समय कहे गये उसके वचनोंसे चलता है। उसने कहा: "हे गृहपति, यह उचित नहीं कि आप संसारमें आसक्त रहकर शरीर छोड़ें। भगवान्ने कहा है कि इस प्रकार प्रपंचासक्तिसे युक्त मृत्यु दुःखकारक होती है। हे गृहपति, कदाचित् आपके मनमें यह शंका उठेगी कि मेरे मरनेके बाद नकुल-माता बच्चोंका पालन नहीं कर सकेगी। संसारके शकटको चला नहीं सकेगी। किन्तु आप अपने मनमें ऐसी शंका मत लाइये; क्योंकि मैं सूत कातनेकी कला जानती हूं और मुझे ऊन तैयार करना भी आता है। इसी

१. अंगुलिमाल नामक डाकूके हृदय-परिवर्तनकी बात भी [illegible] है। इसके लिए देखिये 'बुद्ध-लीला-सार-संग्रह'।

मददसे मैं आपकी मृत्युके बाद बच्चोंका पोषण कर सकूंगी। अतएव हे गृहपति, मैं यह चाहती हूं कि आपकी मृत्यु आसक्तियुक्त अन्तःकरणसे न हो। हे गृहपति, आपके मनमें दूसरी शंका यह भी उठ सकती है कि मेरे बाद नकुल-माता पुनर्विवाह कर लेंगी। परन्तु आप यह शंका भी छोड़ दीजिये। आप जानते ही हैं कि पिछले सोलह वर्षोंसे मैं उपोसथ व्रतका पालन करती रही हूं। ऐसी दशामें आपकी मृत्युके बाद मैं पुनर्विवाह कैसे करूंगी? हे गृहपति, आपके मनमें यह शंका उठ सकती है कि आपके मरने पर मैं बुद्ध भगवान्का और भिक्षु-संघका धर्मोपदेश सुनने नहीं जाऊंगी। किन्तु आप पूरा विश्वास रखिये कि आपके बाद भी मैं पहले ही की तरह बुद्धोपदेश भावपूर्वक सुनती रहूंगी। अतएव किसी भी प्रकारकी उपाधिके बिना आप मृत्युकी शरण लीजिये। हे गृहपति, आपके मनमें यह शंका उठ सकती है कि आपके बाद मैं भगवान् बुद्ध द्वारा उपदेशित शीलका यथार्थ रीतिसे पालन नहीं करूंगी। किन्तु आप विश्वास रखिये कि जो उत्तम शीलवती बुद्धोपासिकायें हैं, उन्हींमें से मैं एक हूं। इसलिए किसी भी प्रकारकी चिंता न रखते हुए आप मृत्युका स्वागत कीजिये। हे गृहपति, आप यह मत समझिये कि मुझे समाधि-लाभ नहीं हुआ है, इसलिए मैं आपकी मृत्युसे बहुत दुःखी हो जाऊंगी। समाधि-लाभवाली जो भी कोई बुद्धोपासिकायें होंगी उन्हींमें से एक मैं हूं, ऐसा समझकर आप मानसिक उपाधि छोड़ दीजिये। हे गृहपति, कदाचित् आपको यह शंका हो सकती है कि मुझे बौद्ध-धर्मका तत्त्व अभी समझमें आया नहीं है।

किन्तु आप यह निश्चित समझिये
हैं, उन्हींमें से एक मैं हूं और यह
चिताको दूर कर दीजिये ।"

१५. किन्तु सौभाग्यसे इस
हो गया । जब बुद्धने यह बात सुन
कहा : "हे गृहपति, तू बड़ा पुण्य
समान उपदेश करनेवाली और तु
तुझे मिली है । हे गृहपति, जो
हैं, उनमें से वह एक है । तेरा
पत्नी मिली है ।"

१६. हृदयको इस प्रकार व
सच्चा चमत्कार वड़ा चमत्कार है

वालकोंको समझाने

बौद्ध शिक्षापद

भला अग्नि-शिखा-जैसे तपे लोहेका ग्रासन;
असंयमी दुष्टका राष्ट्रान्न भोजन कभी नहीं।[1]

प्रत्येक सम्प्रदाय-प्रवर्तक अपने शिष्योंका आचरण सदाचार, शुद्धाचार, सभ्यता और नीतिका पोषक हो, इस हेतुसे नियमोंकी रचना करता है। इन नियमोंमें कुछ सार्वजनिक स्वरूपके होते हैं, और कुछ उस-उस सम्प्रदायकी विशेष रूढ़ियोंके स्वरूपवाले होते हैं; कुछ सब कालोंमें महत्त्वके होते हैं, और कुछका महत्त्व उस काल तक ही सीमित रहता है।

२. बुद्ध-धर्मके ऐसे नियम 'शिक्षापद' कहे जाते हैं। इनका विस्तृत परिचय श्री धर्मानन्द कोसम्बीकी 'बौद्ध संघका परिचय'[2] नामक पुस्तकमें दिया गया है।

जिस प्रकार श्री सहजानन्द स्वामीकी शिक्षापत्री प्रत्येक आश्रम और वर्णके स्त्री-पुरुषोंके लिए है, ये नियम उस प्रकारके नहीं हैं। ये विशेष कर भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके लिए ही हैं। इसलिए यहां इन सब नियमोंका उल्लेख करना आवश्यक नहीं। किन्तु इनमें से कुछ नियम सार्वजनिक रूपमें उपयोगी हैं और कुछ विशेष रूपसे समाज-सेवकोंके लिए महत्त्वके हैं। ऐसे नियमोंकी संक्षिप्त जानकारी आज उचित प्रतीत होनेवाली भाषामें यहां दी जाती है।

---

१. सेय्यो अयोगुळो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखूपमो।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असञ्ञतो॥ (धम्मपद)

२. गूजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित।

किन्तु आप यह निश्चित समझिये कि जो तत्त्वज्ञ उपासिकायें हैं, उन्हींमें से एक मैं हूं और यह सोचकर आप अपने मनसे चिंताको दूर कर दीजिये ।"

१५. किन्तु सौभाग्यसे इस ज्ञानी स्त्रीका पति स्वस्थ हो गया । जब बुद्धने यह बात सुनी, तो उन्होंने उसके पतिसे कहा : "हे गृहपति, तू बड़ा पुण्यशाली है कि नकुल-माताके समान उपदेश करनेवाली और तुझ पर प्रेम रखनेवाली स्त्री तुझे मिली है । हे गृहपति, जो उत्तम शीलवती उपासिकायें हैं, उनमें से वह एक है । तेरा महाभाग्य है कि तुझे ऐसी पत्नी मिली है ।"

१६. हृदयको इस प्रकार बदल देना ही महापुरुषोंका सच्चा चमत्कार बड़ा चमत्कार है । दूसरे चमत्कार तो बालकोंको समझानेके खेल हैं ।

बौद्ध शिक्षापद

भला अग्नि-शिखा-जैसे तपे लोहेका ग्रास;
असंयमी दुष्टका राष्ट्रान्न भोजन कभी नहीं।[1]

प्रत्येक सम्प्रदाय-प्रवर्तक अपने शिष्योंका आचरण सदाचार, शुद्धाचार, सभ्यता और नीतिका पोषक हो, इस हेतुसे नियमोंकी रचना करता है। इन नियमोंमें कुछ सार्वजनिक स्वरूपके होते हैं, और कुछ उस-उस सम्प्रदायकी विशेष रूढियोंके स्वरूपवाले होते हैं; कुछ सब कालोंमें महत्त्वके होते हैं, और कुछका महत्त्व उस काल तक ही सीमित रहता है।

२. बुद्ध-धर्मके ऐसे नियम 'शिक्षापद' कहे जाते हैं। इनका विस्तृत परिचय श्री धर्मानन्द कोसम्बीकी 'बौद्ध संघका परिचय'[2] नामक पुस्तकमें दिया गया है।

जिस प्रकार श्री सहजानन्द स्वामीकी शिक्षापत्री प्रत्येक आश्रम और वर्णके स्त्री-पुरुषोंके लिए है, ये नियम उस प्रकारके नहीं हैं। ये विशेष कर भिक्षुओं और भिक्षुणियोंके लिए ही हैं। इसलिए यहा इन सब नियमोंका उल्लेख करना आवश्यक नही। किन्तु इनमें से कुछ नियम सार्वजनिक रूपमें उपयोगी हैं और कुछ विशेष रूपसे समाज-सेवकोंके लिए महत्त्वके हैं। ऐसे नियमोंकी संक्षिप्त जानकारी आज उचित प्रतीत होनेवाली भाषामें यहा दी जाती है।

---

१. सेय्यो अयोगुळो भुत्तो तत्तो अग्गिसिखूपमो।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो रट्ठपिण्डं असयतो॥ (धम्मपद)

२. गूजरात विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित।

३. शिष्यको अपने गुरुकी शुश्रूषा नीचे लिखे अनुसार करनी चाहिये :

(१) **प्रात:कर्म** — सवेरे जल्दी उठकर, जूते उतार कर, कपड़े व्यवस्थित रखकर, गुरुको दतौन और मुंह धोनेके लिए पानी देना और बैठनेके लिए आसन बिछाना। इसके बाद उनके लिए जलपानकी सामग्री प्रस्तुत करना। जलपान कर चुकने पर उन्हें हाथ-मुंह धोनेके लिए पानी देना और जलपानके बरतन साफ करके उन्हें व्यवस्थित रीतिसे उनकी जगह पर रख देना। गुरुके उठने पर आसन यथास्थान रखना और जगह गंदी हुई हो, तो उसे साफ कर डालना।

शिष्यके धर्म

(२) **विचरण** — जब गुरुको बाहर जाना हो, तो उनके बाहर जानेके वस्त्र लाकर देना और पहने हुए कपड़े उतार दें, तो उन्हें संभाल लेना। गुरु किसी गांव जानेवाले हों, तो उनके प्रवासके पात्र, बिछौना और कपड़े व्यवस्थित रीतिसे बांधकर तैयार रखना। गुरुके साथ खुदको भी जाना हो, तो स्वयं व्यवस्थित रीतिसे कपड़े पहन कर, शरीरको भली-भांति ढंककर अपने पात्र, बिछौना और वस्त्र बांधकर तैयार हो जाना।

(३) मार्गमें चलते समय शिष्यको गुरुसे बहुत दूर या बहुत पास नहीं चलना चाहिये।

(४) **वाणी-संयम** — जब गुरु बोलते हों, तो शिष्यको बीचमें बोलना नहीं चाहिये। किन्तु यदि गुरु [illegible] करनेवाली बात बोलें, तो उनका [illegible] चाहिये।

(५) प्रत्यागमन — बाहरसे लौटने पर खुद पहले पहुंचकर गुरुका आसन तैयार करना। पैर धोनेके लिए पानी और पटा तैयार रखना। आगे बढ़कर गुरुके हाथसे छतरी, चादर आदि जो कुछ हो, सो ले लेना। घरमें पहननेका वस्त्र देना और पहना हुआ वस्त्र उतारें तो उसे ले लेना। यदि वह वस्त्र पसीनेसे भीग गया हो, तो उसे थोड़ी देर धूपमें सुखाना; किन्तु उसे धूपमें ही न रहने देना। वस्त्रको समेट लेना और इस बातकी चिंता रखना कि समेटते समय वह फटे नहीं। वस्त्रको तहाकर रख देना।

(६) भोजन — जलपानकी तरह ही भोजनके समय भी गुरुके आसन, पात्र, भोजन आदिकी व्यवस्था करना और उनके जीम चुकने पर बरतन आदि साफ करके जीमनेकी जगह साफ करना।

(७) भोजनके बरतन किसी साफ पटे पर या चौकी पर रखना, खुली अथवा नंगी जमीन पर न रखना।

(८) स्नान — यदि गुरुको नहाना हो, तो उसकी व्यवस्था करना; उन्हें ठंडे पानीकी जरूरत हो, तो ठंडा पानी देना; गरम पानी चाहें, तो गरम देना। मर्दनकी आवश्यकता हो, तो शरीरको तेल लगाना या मालिश कर देना। जलाशयमें नहाना हो, तो वहां भी आवश्यक व्यवस्था कर देना। पहले स्वयं पानीसे बाहर निकलकर शरीर पोंछकर कपड़े बदलना। फिर गुरुको अंगोछा देना और आवश्यकता हो, तो उनका शरीर पोंछ देना। बादमें उन्हें धुले हुए कपड़े देना। भीगे हुए कपड़े सफाईके साथ धो डालना। फिर उन्हें रस्सी पर

सुखाना और सूखनेके बाद ठीकसे घड़ी करके रख देना; पर धूपमें लम्बे समय तक नहीं रहने देना ।

(९) **निवास-स्वच्छता** — गुरुके निवासका कचरा रोज साफ करना चाहिये । निवासकी सफाई करते समय पहले जमीन पर रखी हुई चीजें, जैसे बरतन, कपड़े, आसन, गद्दे, तकिये आदि उठाकर बाहर अथवा ऊंचाई पर रखना चाहिये । बाहर निकालते समय खटिया दरवाजेके साथ टकराये नहीं, इसकी चिंता रखनी चाहिये । खटियाके प्रतिपादक (पायोंके नीचे रखनेके लकड़ी अथवा पत्थरके टेके) एक ओर रखने चाहिये । पीकदानी उठाकर बाहर रखनी चाहिये । बिछौना किस तरह बिछाया है, सो ध्यानमें रखकर फिर बाहर निकालना चाहिये । यदि निवासमें जाले लटक रहे हों, तो पहले छत साफ करनी चाहिये । बादमें खिड़कियां, दरवाजे और कोने साफ करने चाहिये । गेरूसे रंगी हुई दीवारें और चूनेके मसालेसे तैयार किया गया फर्श गंदा हो गया हो, तो पानीमें कपड़ा भिगोकर उसे निचो लेनेके बाद उससे साफ करना चाहिये । सादे लीपे हुए फर्श या आंगनको पहले पानी छिड़ककर फिर साफ करना चाहिये, जिससे धूल न उड़े । कचरा इकट्ठा करके निश्चित स्थान पर डाल देना चाहिये ।

बिछौना, खटिया, पटा, तकिये, पीकदानी आदि सारी चीजें धूपमें सुखाकर उचित स्थान पर रख देनी चाहियें ।

(१०) घरकी जिस दिशामें हवाके कारण धूल उड़ती हो, उस तरफकी खिड़कियां बन्द कर देनी चाहियें । जाड़ेके दिनोंमें खिड़कियां दिनमें खुली रखकर रातको बन्द करनी चाहियें और गर्मियोंमें दिनमें बन्द रखकर रातको खोलनी चाहियें ।

(११) शिष्यको अपने रहनेकी कोठरी, बैठनेकी कोठरी, एकत्र मिलनेका दीवानखाना, स्नानगृह और पाखाने साफ रखने चाहिये। पीने और बरतनेका पानी भरकर रखना चाहिये। पाखानेमें रखी हुई कोठीका पानी चुक गया हो, तो उसे भी भरकर रखना चाहिये।

(१२) अध्ययन — गुरुसे नियत समय पर जो पाठ लेना हो, सो ले लेना चाहिये और जो प्रश्न पूछने हो, सो पूछ लेने चाहिये।

(१३) गुरुके दोषोंकी शुद्धि — गुरुके धर्माचरणमें असन्तोष या कमी पैदा हुई हो, अथवा मनमें शंका उठी हो अथवा मिथ्या दृष्टि प्राप्त हुई हो, तो शिष्यको उसे दूसरोंके द्वारा दूर कराना चाहिये या स्वयं दूर करना चाहिये अथवा धर्मोपदेश करना चाहिये। यदि गुरु द्वारा संस्थाके, विशेषकर नैतिक और सैद्धांतिक, नियमोंका भंग हुआ हो, तो ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये, जिससे उनका परिमार्जन हो और संस्था उन्हें फिरसे पहलेकी स्थितिमें ला सके।

(१४) बीमारी — गुरुकी बीमारीमें उनके स्वस्थ होने अथवा मरने तक उनकी सेवा करनी चाहिये।

गुरुके धर्म

४. (१५) अध्यापन — गुरुको शिष्यसे प्रेम करना चाहिये और उस पर अनुग्रह रखना चाहिये। परिश्रमके साथ उसे पाठ सिखाने चाहिये, उसके धार्मिक प्रश्नोंके उत्तर देने चाहिये, उपदेश करना चाहिये और रीति-रिवाजकी जानकारी देकर उसकी मदद [illegible]।

(१६) **शिष्यकी चिंता** — अपने पास वस्त्र, पात्र आदि हों और शिष्यके पास न हों, तो उसे अपने देने चाहिये अथवा दूसरे उपलब्ध करा देने चाहिये।

(१७) **बीमारी** — शिष्यकी बीमारीमें गुरुको ऐसा व्यवहार करना चाहिये, मानो वह स्वयं शिष्य हो और शिष्य गुरुकी जगह हो ।

(१८) **कर्म-कौशल्य** — कपड़े किस प्रकार धोना, स्वच्छता और व्यवस्था किस प्रकार लाना और संभालना आदि बातें शिष्यको स्वयं मेहनत करके सिखानी चाहिये ।

५. (१९) **आरोग्य आदि** — बौद्ध भिक्षु बननेकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिमें नीचे लिखी योग्यता होनी चाहिये: उसे

भिक्षु [समाज-सेवक] की योग्यता

कोढ़, कंठमाल, किलास, क्षय और अपस्मार (मिरगी) की बीमारियोंमें से कोई बीमारी न हो; वह पुरुषत्वहीन न हो; स्वतंत्र हो (अर्थात् किसीके दासत्वमें न हो); कर्जदार न हो; माता-पिताकी आज्ञा लेकर आया हो; बीस वर्ष पूरे कर चुका हो; और कपड़े, बरतन आदि साधनोंसे युक्त हो ।

(२०) **तैयारी** — भिक्षुकी तैयारी नीचे लिखे अनुसार होनी चाहिये: (१) आजीवन भिक्षाटन पर रहनेकी तैयारी: बिना भिक्षाके मिल जाय, तो वह सौभाग्य माना जाय; (२) चिथड़ोंवाली कंथा पर रहनेकी तैयारी: पूरे वस्त्र मिल जायं, तो सौभाग्य मानना. (३) पेड़के नीचे रहनेकी तैयारी: घर मिल जाय, तो अतिरिक्त समझा जाय [illegible]

काम चला लेनेकी तैयारी : घी-मक्खन आदि वस्तुएं दवाके रूपमें मिले, तो सौभाग्य समझा जाय ।

(२१) व्रत — भिक्षुको नीचे लिखे व्रतोंका पालन करना चाहिये :

भिक्षुके व्रत

(१) शुद्ध ब्रह्मचर्य; (२) अस्तेय : भिक्षुको घासका तिनका भी चुराना नहीं चाहिये — जो भिक्षु चार आने अथवा उससे अधिक कीमतकी चोरी करे, वह भिक्षु-संघसे हटा दिया जाये; (३) अहिंसा : जान-बूझकर सूक्ष्म जन्तुओंको भी मारना नहीं — मनुष्यकी हत्या करनेवाला, भ्रूणहत्या करनेवाला भिक्षु-संघसे हटा दिया जाय; (४) अदंभित्व : जो भिक्षु अपनेको न प्राप्त हुई समाधिको प्राप्त हुई बतावे, वह भिक्षु-संघसे हटा दिया जाय ।

६. (२२) बौद्ध धर्मके एक खास नियम द्वारा यह आज्ञा की गई है कि उपदेश लोकभाषाओंमें ही किया जाय । वैदिक (संस्कृत) भाषामें भाषान्तर करनेकी मनाही की गई है ।

भाषा

७. दूसरे गांवसे किसी विहारमें पहुंचनेवाले भिक्षुको वहां पहुंचने पर नीचे लिखे अनुसार बरताव करना चाहिये :

अतिथिके धर्म

(२३) प्रवेश करते ही चप्पल निकालकर झटक लेना; छतरी नीचे झुका लेना; सिर पर कपड़ा ओढ़ा हो, तो उसे उतारकर कंधे पर ले लेना और धीमेसे प्रवेश करना; भिक्षुओंके इकट्ठा होनेकी जगहका पता लगाना; अपना सामान एक ओर रखना; पानीके स्थानका पता लगाकर पैर धोना; पैर धोते समय एक हाथसे [illegible]लना और दूसरे हाथसे पैर मलना;

(१६) **शिष्यकी चिंता** — अपने पास वस्त्र, पात्र आदि हों और शिष्यके पास न हों, तो उसे अपने देने चाहिये अथवा दूसरे उपलब्ध करा देने चाहिये।

(१७) **बीमारी** — शिष्यकी बीमारीमें गुरुको ऐसा व्यवहार करना चाहिये, मानो वह स्वयं शिष्य हो और शिष्य गुरुकी जगह हो ।

(१८) **कर्म-कौशल्य** — कपड़े किस प्रकार धोना, स्वच्छता और व्यवस्था किस प्रकार लाना और संभालना आदि बातें शिष्यको स्वयं मेहनत करके सिखानी चाहिये ।

५. (१९) **आरोग्य आदि** — बौद्ध भिक्षु बननेकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिमें नीचे लिखी योग्यता होनी चाहिये: उसे कोढ़, कंठमाल, किलास, क्षय और अपस्मार (मिरगी) की बीमारियोंमें से कोई बीमारी न हो; वह पुरुषत्वहीन न हो; स्वतंत्र हो (अर्थात् किसीके दासत्वमें न हो); कर्जदार न हो; माता-पिताकी आज्ञा लेकर आया हो; बीस वर्ष पूरे कर चुका हो; और कपड़े, बरतन आदि साधनोंसे युक्त हो ।

भिक्षु [समाज-सेवक] की योग्यता

(२०) **तैयारी** — भिक्षुकी तैयारी नीचे लिखे अनुसार होनी चाहिये: (१) आजीवन भिक्षाटन पर रहनेकी तैयारी: बिना भिक्षाके मिल जाय, तो वह सौभाग्य माना जाय; (२) चिथड़ोंवाली कंथा पर रहनेकी तैयारी: पूरे कपड़े मिल जाय, तो सौभाग्य मानना; (३) पेड़के नीचे रहनेकी तैयारी: घर मिल जाय, तो सौभाग्य मानना [illegible]

काम चला लेनेकी तैयारी: घी-मक्खन आदि वस्तुएं दवाके रूपमें मिलें, तो सौभाग्य समझा जाय।

भिक्षुके व्रत

(२१) व्रत — भिक्षुको नीचे लिखे व्रतोंका पालन करना चाहिये:

(१) शुद्ध ब्रह्मचर्य; (२) अस्तेय : भिक्षुको घासका तिनका भी चुराना नहीं चाहिये — जो भिक्षु चार आने अथवा उससे अधिक कीमतकी चोरी करे, वह भिक्षु-संघसे हटा दिया जाये; (३) अहिंसा : जान-बूझकर सूक्ष्म जन्तुओंको भी मारना नहीं — मनुष्यकी हत्या करनेवाला, भ्रूणहत्या करनेवाला भिक्षु-संघसे हटा दिया जाय, (४) अदम्भित्व : जो भिक्षु अपनेको न प्राप्त हुई समाधिको प्राप्त हुई बतावे, वह भिक्षु-संघसे हटा दिया जाय।

भाषा

६. (२२) बौद्ध धर्मके एक खास नियम द्वारा यह आज्ञा की गई है कि उपदेश लोकभाषाओंमें ही किया जाय। वैदिक (संस्कृत) भाषामें भाषान्तर करनेकी मनाही की गई है।

अतिथिके धर्म

७. दूसरे गांवसे किसी विहारमें पहुंचनेवाले भिक्षुको वहां पहुंचने पर नीचे लिखे अनुसार बरताव करना चाहिये:

(२३) प्रवेश करते ही चप्पल निकालकर झटक लेना; छतरी नीचे झुका लेना, सिर पर कपड़ा ओढ़ा हो, तो उसे उतारकर कंधे पर ले लेना और धीमेसे प्रवेश करना; भिक्षुओंके इकट्ठा होनेकी जगहका पता लगाना; अपना सामान एक ओर रखना; पानीके स्थानका पता लगाकर पैर धोना; पैर धोते समय एक हाथसे पानी डालना और दूसरे हाथसे पैर मलना;

विदा होनेवालेके कर्तव्य

(२५) अपने उपयोगमें आये हुए बरतन मूल स्थान पर वापस रख देना अथवा जिसे सौंपने हो उसके हवाले करना; अपने निवासके लिए प्राप्त स्थानके खिड़की-दरवाजे बन्द करके दूसरे भिक्षुओंको (और वे न हों तो चौकीदारको) सूचना देनेके बाद ही जाना; खटियाको चार पत्थरोंके टेकों पर रखकर और उस पर चौकी आदि रख कर ही जाना ।

स्त्रियोंके साथ सम्बन्ध

१०. (२६) एकांत — भिक्षुको आपत्ति-कालमें अथवा अनिवार्य कारणके विना किसी स्त्रीके साथ एकान्तमें नहीं रहना चाहिये और सुज्ञ पुरुषोंकी अनुपस्थितिमें उसके साथ पांच-छह वाक्योंसे अधिक बातचीत, चर्चा अथवा उपदेश नहीं करना चाहिये; उसके साथ अकेले यात्रा नहीं करनी चाहिये।

(२७) एकान्तभंग — जहां पति-पत्नी अकेले बैठे हो अथवा सोये हों, उस कमरेमें पहलेसे सूचना किये विना भिक्षुको प्रवेश नहीं करना चाहिये ।

(२८) परिचर्या — भिक्षुको अपने निकटके रिश्तेकी स्त्रीके अलावा दूसरी स्त्रीसे अपने वस्त्र न तो धुलवाने चाहिये और न सिलवाने चाहिये ।

(२९) भेंट — भिक्षुको किसी गैर-रिश्तेदार स्त्रीको अथवा भिक्षुणीको वस्त्रादिकी भेंट नहीं देनी चाहिये ।

कुछ पैमाने

११. (३०) खटिया — भिक्षुको अपनी खटिया पायोंके नीचेकी अटनी[1] से आठ सुगत अंगुल ऊंची रखनी चाहिये, अधिक नहीं।

---

1. पायोंकी बैठककी जगह घोड़ेके खुर या टाप जैसा

(२५) अपने उपयोगमें आये हुए बरतन मूल स्थान पर वापस रख देना अथवा जिसे सौंपने हो उसके हवाले करना; अपने निवासके लिए प्राप्त स्थानके खिड़की-दरवाजे बन्द करके दूसरे भिक्षुओंको (और वे न हों तो चौकीदारको) सूचना देनेके बाद ही जाना; खटियाको चार पत्थरोंके टेकों पर रखकर और उस पर चौकी आदि रख कर ही जाना।

विदा होनेवालेके कर्तव्य

१०. (२६) एकांत — भिक्षुको आपत्ति-कालमें अथवा अनिवार्य कारणके बिना किसी स्त्रीके साथ एकान्तमें नहीं रहना चाहिये और सुज्ञ पुरुषोंकी अनुपस्थितिमें उसके साथ पांच-छह वाक्योंसे अधिक बातचीत, चर्चा अथवा उपदेश नहीं करना चाहिये; उसके साथ अकेले यात्रा नहीं करनी चाहिये।

स्त्रियोंके साथ सम्बन्ध

(२७) एकान्तभंग — जहां पति-पत्नी अकेले बैठे हों अथवा सोये हों, उस कमरेमें पहलेसे सूचना किये बिना भिक्षुको प्रवेश नहीं करना चाहिये।

(२८) परिचर्या — भिक्षुको अपने निकटके रिश्तेकी स्त्रीके अलावा दूसरी स्त्रीसे अपने वस्त्र न तो धुलवाने चाहिये और न सिलवाने चाहिये।

(२९) भेंट — भिक्षुको किसी गैर-रिश्तेदार स्त्रीको अथवा भिक्षुणीको वस्त्रादिकी भेंट नहीं देनी चाहिये।

११. (३०) खटिया — भिक्षुको अपनी खटिया पायोंके नीचेकी अटनी[१]से आठ सुगत अंगुल ऊंची रखनी चाहिये, अधिक नहीं।

कुछ पैमाने

१. पायोंकी बैठककी जगह घोड़ेके खुर या टाप जैसा भाग।

(३१) **आसन**—आसनका प्रमाण: अधिकसे अधिक लम्बाई दो सुगत वितस्ति[1]; चौड़ाई लगभग डेढ़ सुगत वितस्ति, और पुराने आसनमें से निकाली हुई चारों ओर लगी किनार एक बालिश्त। चारों ओर पुराने आसनकी अलग रंगवाली किनार लगाये बिना आसन नहीं बनाना चाहिये।

(३२) **कच्छ-पंचा**—लम्बाई चार सुगत वितस्ति, चौड़ाई दो सुगत वितस्ति।

(३३) **धोती-पंचा**—लम्बाई छह सुगत वितस्ति, चौड़ाई लगभग ढाई सुगत वितस्ति।

(३४) **चीवर**—लम्बाई नौ सुगत वितस्ति, चौड़ाई छह सुगत वितस्ति।

सभ्यता

१२. (३५) **आसन और गति**—शरीरको भलीभांति ढंककर चलना और बैठना चाहिये। नजर नीची रखकर चलना-बैठना चाहिये। वस्त्रको उड़ाते हुए चलना अथवा बैठना नहीं चाहिये। जोरसे हंसते हुए अथवा जोरसे बोलते हुए चलना

---

१. सुगत वितस्तिको लगभग डेढ़ हाथ माना गया है; किन्तु इसमें कुछ भूल मालूम होती है। दूसरे स्थानोंमें सुगत अंगुल, सुगत चीवर जैसे शब्दोंका प्रयोग हुआ है। मुझे लगता है कि सुगतका अर्थ है बुद्ध, और सुगत अंगुल, सुगत वितस्ति और सुगत चीवरका अर्थ है बुद्धके अंगुल, [illegible] और चीवरका प्रमाण। यदि वितस्तिको डेढ़ हाथ मानते हैं, तो आज भी भिक्षुओंके इनके चीवरको देखते हुए यह प्रमाण बहुत बड़ा मालूम होता है। उदाहरणके लिए, लुंगीकी तरह पहननेका पंचा ६×१॥=९ हाथ लम्बा और २॥×१॥=३॥। हाथ चौड़ा नहीं हो सकता। किन्तु ६×२॥ बालिश्त (लगभग १॥ से १॥। गज × लगभग २४") पर्याप्त माना जायगा। आसन भी ३०"×२५" का पर्याप्त होगा।

या बैठना नहीं चाहिये। चलते अथवा बैठते हुए शरीरको हिलाते रहना ठीक नहीं। हाथ नहीं हिलाना चाहिये। सिर नहीं हिलाना चाहिये। कमर पर हाथ नहीं रखना चाहिये। सिर पर ओढ़े हुए नहीं रहना चाहिये। एड़ी ऊंची नहीं रखनी चाहिये। पल्लत्थिकाके रूपमें (घुटनोंको बांध कर आराम कुर्सी अथवा ढोलती कुर्सीकी तरह) नहीं बैठना चाहिये।

(३६) भोजन—भोजन करते समय ध्यान पात्रकी ओर रखना चाहिये, परोसी जानेवाली वस्तुओंकी तरफ ध्यान रखना चाहिये, किसी वस्तुको अधिक परोसवानेके लिए ढंकने अथवा छिपानेकी युक्ति नहीं करनी चाहिये; बीमारीके अलावा अपने लिए खास वस्तुयें तैयार नहीं करवानी चाहिये; दूसरेकी थालीकी तरफ ताकना नहीं चाहिये, बड़े कौर नहीं लेने चाहिये, कौरके मुंह तक पहुंचनेसे पहले मुह खोलना नहीं चाहिये; मुंहमें हथेली डालकर जीमना नहीं चाहिये, कौरको मुंहमें फेंककर जीमना नहीं चाहिये; खानेकी चीजको मुंहसे तोड़कर खाना नहीं चाहिये; गालमें अन्न भरकर खाना नहीं चाहिये; जब कौर मुंहमें हो तो बोलना नही चाहिये, हाथ झटक-झटक कर जीमना नहीं चाहिये, भात इधर-उधर उड़ाते हुए जीमना नहीं चाहिये; जीभ इधर-उधर हिलाते हुए जीमना नहीं चाहिये। जीमते समय मुंहसे चप-चपकी आवाज नहीं करनी चाहिये; सू-सू आवाजके साथ जीमना नही चाहिये; हाथ, ओठ अथवा थाली चाटते नही रहना चाहिये। जूठे हाथोंसे पानीका गिलास नहीं उठाना चाहिये। जूठनवाला पानी रास्तेमें डालना नही चाहिये।

(३७) शौच—बिना बीमारीके खड़े रहकर घास पर या पानीमें शौच अथवा लघुशंका नहीं करनी चाहिये।

कुछ घटनायें और अन्त

तितिक्षापूर्वक दूसरोंके दोषोंको क्षमा करना सबसे बड़ा तप माना जाता है। सुगत कहते हैं कि संसृतिसे निवृत्ति पाना सबसे बड़ी गति है। जो दूसरोंकी हत्या करते अथवा उन्हें सताते हैं, वे भले गेरुए कपड़े पहनते हों, साधु कदापि नहीं होते।[1]

ज्ञानकी कसौटी

महापुरुषोंके उपदेशोंसे पता चलता है कि उन्होंने किस तरह विचार किया है। उनके उपदेशोंका समाज पर जो असर होता है, उससे उनकी वाणीके प्रभावका पता चलता है। किन्तु इस विचार और वाणीके मूलमें रहनेवाली निष्ठाका पता तो उनके जीवनकी घटनाओंसे ही चलता है। मनुष्य जितना विचार करता है, उतना बोल नहीं सकता और जितना बोलता है, उतना कर नहीं सकता। अतएव वह जो करता है, उसी परसे मालूम हो सकता है कि उसका तत्त्वज्ञान उसके हृदयमें किस हद तक उतरा था।

---

१. खन्ती परमं तपो तितिक्खा
निब्बानं परमं वदन्ति बुद्धा।
न हि पब्बजितो परूपघाती
समणो होति परं विहेठयन्तो॥
(धम्मपद)

२. यह कहनेमें कोई आपत्ति नहीं कि यदि संसारके प्रति मित्रताकी भावनाकी कोई मूर्ति हम बना सकें, तो वह बुद्धके समान होगी। उनके पास प्राणिमात्रके लिए मैत्रीके अतिरिक्त दूसरी कोई दृष्टि ही न थी। उनसे शत्रुता रखनेवाले कई लोग निकले, उन पर नीचसे नीच आरोप लगाकर उन्हें मार डालने तकके प्रयत्न किये गये, किन्तु उनके हृदयमें इन विरोधियोंके प्रति भी मित्रतासे हल्का कोई भाव प्रकट हो ही नहीं सका। नीचेकी घटनाओंसे इसका पता चलेगा और उनसे यह भी मालूम हो सकेगा कि अवतारी पुरुष कैसे होते हैं।

मित्र-भावना

३. कौशाम्बीके राजा उदयनकी रानी जब कुमारी थी, तभी उसके पिताने बुद्धसे बिनती की थी कि वह उसका पाणि-ग्रहण करे। किन्तु बुद्धने उस समय उत्तर दिया था: "मनुष्यके नाशवान शरीरके प्रति अपना मोह छूट जानेसे मैंने घर छोड़ा। विवाह करनेमें मुझे कोई आनन्द प्रतीत नहीं होता। मैं इस कन्याको किस प्रकार स्वीकार करूं?"

कौशाम्बीकी रानी

४. अपने समान सुन्दर कन्याको यों अस्वीकार कर देनेसे उस कुमारीने अपमानका अनुभव किया। उसने मनमें निश्चय किया कि समय आने पर बुद्धसे इसका बदला लूंगी। काल पाकर वह राजा उदयनकी पटरानी बनी।

५. एक बार बुद्ध कौशाम्बी आये। रानीने नगरके बदमाशोंको पैसे देकर उन्हें यह सिखाया कि जब बुद्ध और उनके शिष्य नगरमें भिक्षाके लिए घूमें, तब तुम

गालियां देना । इस कारण जव वुद्धके संघने गलियोंमें प्रवेश किया, तो चारों तरफसे उन पर गंदी गालियोंकी वर्षा होने लगी । कुछ शिष्य इन अपशव्दोंसे परेशान हुए । आनन्द नामके एक शिष्यने वुद्धसे विनती की कि नगर छोड़ देना चाहिये ।

६. वुद्धने कहा : आनन्द, अगर वहां भी लोग हमें गालियां देंगे तो हम क्या करेंगे ?

आनन्द वोला : कहीं और जायेंगे ।

वुद्ध : और वहां भी ऐसा ही हुआ तो ?

आनन्द : तो किसी तीसरी जगह जायेंगे ।

वुद्ध : आनन्द, यदि हम इस प्रकार दौड़-भाग करते रहेंगे, तो अकारण ही क्लेशके पात्र वनेंगे । इसके विपरीत, यदि हम इन लोगोंके अपशव्दोंको सहन कर लेंगे, तो इनके डरसे और कहीं जानेका कारण नहीं रहेगा, और चार-आठ दिन इस तरह इनकी उपेक्षा करनेसे ये अपने-आप चुप हो जायंगे ।

७. सात-आठ दिनमें ही शिष्योंको वैसा अनुभव हो गया, जैसा वुद्धने कहा था ।

८. एक वार वुद्ध श्रावस्तीमें रहते थे । उनकी [illegible] लोकप्रियताके कारण नगरमें उनके भिक्षुओंका

हत्याका आरोप

[illegible] अच्छा आदर-सत्कार होता था । इस कारण [illegible] अन्य सम्प्रदायोंके वैरागियोंके मनमें ईर्ष्या [illegible]ई । उन्होंने वुद्धके वारेमें यह वात फैलाई कि उनका [illegible] अच्छा नहीं है । कुछ दिनोंके वाद वैरागियोंने एक

वैरागी स्त्रीकी हत्या करवाकर उसकी लाश बुद्धके विहारके पास एक गड्ढेमें फिकवा दी और फिर राजाके सामने फरियाद की कि उनके संघकी एक स्त्री खो गई है और उसके बारेमें उन्हें बुद्ध पर और उनके शिष्यों पर शक है। राजाके आदमियोंने लाशकी तलाश की और उन्हें बुद्धके विहारके पाससे लाश मिल गई। थोड़े ही समयमें सारे शहरमें यह बात फैल गई और लोगोंका विश्वास बुद्ध और उनके भिक्षुओं परसे उठ गया। हर कोई उनके नाम पर थू-थू करने लगा।

९. बुद्ध इससे जरा भी नहीं डरे। वे यह सोच कर शान्त रहे कि "झूठ बोलनेवालेके लिए पापके सिवाय दूसरी गति नहीं।"

१०. कुछ दिनोंके बाद जिन हत्यारोंने वैरागिनका खून किया था, वे शराबकी एक दुकानमें इकट्ठा हुए और हत्या करनेके लिए मिले धनका बंटवारा करने लगे। एक बोला: "मैंने सुन्दरीको मारा था, इसलिए मैं बड़ा हिस्सा लूंगा।"

दूसरेने कहा: "मैंने गला दबाया न होता, तो सुन्दरीने चिल्लाकर हमारा भंडा फोड़ दिया होता।"

११. राजाके गुप्तचरोंने यह बातचीत सुन ली। वे उन्हें पकड़कर राजाके पास ले गये। हत्यारोंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया और सारी घटना जिस तरह घटी थी, सो कह सुनाई। बुद्ध पर लगा आरोप झूठा सिद्ध होनेसे उनके प्रति लोगोंका पूज्यभाव दुगुना बढ़ गया और उन वैरागियोंको सबने धिक्कारा।

१२. उनका तीसरा विरोधी देवदत्त नामका उनका एक शिष्य ही था। देवदत्त शाक्यवंशका ही था। वह ऐश्वर्यका अत्यन्त लोभी था। उसे सम्मान और बड़प्पनकी भूख थी। किसी राजकुमारको प्रसन्न करके उसने यह कार्य सिद्ध करनेका विचार किया।

देवदत्त

१३. बिम्बिसार राजाका अजातशत्रु नामक एक पुत्र था। देवदत्तने उसे फुसलाकर अपने वशमें कर लिया।

१४. बादमें वह बुद्धके पास आया और कहने लगा: "अब आप बूढ़े हो चुके हैं। इसलिए मुझे सब भिक्षुओंका नायक बना दीजिये और आप अपना शेष जीवन शान्तिपूर्वक बिताइये।"

१५. बुद्धने यह मांग स्वीकार नहीं की। उन्होंने कहा: "तू इस अधिकारके योग्य नहीं है।"

१६. देवदत्तने इसे अपना अपमान समझा। उसने मन ही मन बुद्धसे बदला लेनेका निश्चय किया।

१७. वह अजातशत्रुके पास गया और बोला: "कुमार, मनुष्य-देहका कोई भरोसा नहीं। कब मर जायेंगे, इसका ठिकाना नहीं। इसलिए जो प्राप्त करना है, सो तुरन्त ही प्राप्त कर लेना चाहिये। तू पहले मरेगा अथवा तेरा बाप पहले मरेगा, इसका कोई निश्चय नहीं। संभव है कि तुझे राज्य मिलनेसे पहले ही तू मर जाय। इसलिए राजाके मरनेका रास्ता न देखकर तू उसे मार डाल और राजा बन। इधर बुद्धको मार कर मैं बुद्ध बन जाता हूं।"

१८. अजातशत्रुको गुरुकी यह युक्ति अच्छी लगी। उसने बूढ़े बापको कैदखानेमें डालकर उसे भूखों मार डाला और खुद सिंहासन पर बैठ गया। अब राज्यमें देवदत्तका प्रभाव बढ़ जाय, तो इसमें आश्चर्य क्या?

लोग जितने राजासे डरते थे, उससे भी अधिक देवदत्तसे डरते थे। उसने राजाको बुद्धकी हत्या करनेके लिए प्रेरित किया। किन्तु जो भी हत्यारे गये वे बुद्धको मार ही नहीं सके। बुद्धकी निरतिशय अहिंसा और प्रेमवृत्ति, उनके वैराग्यपूर्ण अन्तःकरणसे निकलनेवाला अचूक उपदेश, उनके शत्रुओंके चित्तको भी शुद्ध कर देता था। अतएव जो-जो भी हत्यारे गये, वे सब बुद्धके शिष्य बन गये।

शिला-प्रहार

१९. इससे देवदत्त बहुत चिढ़ गया। एक बार गुरु (बुद्ध) पर्वतकी छायामें घूम रहे थे, उस समय देवदत्तने पर्वतकी धार परसे एक बड़ी शिला उनके ऊपर ढकेल दी। दैवयोगसे शिला तो उन पर नहीं पड़ी, पर उसमें से एक चिप्पी उड़कर बुद्धदेवके पैरमें लगी। बुद्धने देवदत्तको देखा, उन्हें उस पर दया आ गई। वे बोले: "अरे मूर्ख, हत्या करनेके विचारसे तूने यह जो दुष्ट कार्य किया है, तू नहीं जानता कि इसके कारण तू कितने पापका भागी बना है।"

२०. पैरके घावके कारण बुद्धके लिए लम्बे समय तक घूमना-फिरना असंभव हो गया। भिक्षुओंको डर लगा कि देवदत्त फिरसे बुद्धको मारनेका मौका ढूंढेगा। इसलिए वे रात-दिन उनके आसपास पहरा देने लगे। जब बुद्धको इनका

१२. उनका तीसरा विरोधी देवदत्त नामका उनका एक शिष्य ही था। देवदत्त शाक्यवंशका ही था। वह ऐश्वर्यका अत्यन्त लोभी था। उसे सम्मान और बड़प्पनकी भूख थी। किसी राजकुमारको प्रसन्न करके उसने यह कार्य सिद्ध करनेका विचार किया।

देवदत्त

१३. बिम्बिसार राजाका अजातशत्रु नामक एक पुत्र था। देवदत्तने उसे फुसलाकर अपने वशमें कर लिया।

१४. बादमें वह बुद्धके पास आया और कहने लगा: "अब आप बूढ़े हो चुके हैं। इसलिए मुझे सब भिक्षुओंका नायक बना दीजिये और आप अपना शेष जीवन शान्तिपूर्वक बिताइये।"

१५. बुद्धने यह मांग स्वीकार नहीं की। उन्होंने कहा: "तू इस अधिकारके योग्य नहीं है।"

१६. देवदत्तने इसे अपना अपमान समझा। उसने मन ही मन बुद्धसे बदला लेनेका निश्चय किया।

१७. वह अजातशत्रुके पास गया और बोला: "कुमार, मनुष्य-देहका कोई भरोसा नहीं। कब मर जायेंगे, इसका ठिकाना नहीं। इसलिए जो प्राप्त करना है, सो तुरन्त ही प्राप्त कर लेना चाहिये। तू पहले मरेगा अथवा तेरा बाप पहले मरेगा, इसका कोई निश्चय नहीं। संभव है कि तुझे राज्य मिलनेसे पहले ही तू मर जाय। इसलिए उसके मरनेका रास्ता न देखकर तू उसे मार डाल और राजा बन जा, इधर बुद्धको मार कर मैं बुद्ध बन जाता हूँ।"

१८. अजातशत्रुको गुरुकी यह युक्ति अच्छी लगी। उसने बूढ़े बापको कैदखानेमें डालकर उसे भूखों मार डाला और खुद सिंहासन पर बैठ गया। अब राज्यमें देवदत्तका प्रभाव बढ़ जाय, तो इसमें आश्चर्य क्या?

लोग जितने राजासे डरते थे, उससे भी अधिक देवदत्तसे डरते थे। उसने राजाको बुद्धकी हत्या करनेके लिए प्रेरित किया। किन्तु जो भी हत्यारे गये वे बुद्धको मार ही नहीं सके। बुद्धकी निरतिशय अहिंसा और प्रेमवृत्ति, उनके वैराग्यपूर्ण अन्तःकरणसे निकलनेवाला अचूक उपदेश, उनके शत्रुओंके चित्तको भी शुद्ध कर देता था। अतएव जो-जो भी हत्यारे गये, वे सब बुद्धके शिष्य बन गये।

शिला-प्रहार

१९. इससे देवदत्त बहुत चिढ़ गया। एक बार गुरु (बुद्ध) पर्वतकी छायामें घूम रहे थे, उस समय देवदत्तने पर्वतकी धार परसे एक बड़ी शिला उनके ऊपर ढकेल दी। दैवयोगसे शिला तो उन पर नहीं पड़ी, पर उसमें से एक चिप्पी उड़कर बुद्धदेवके पैरमें लगी। बुद्धने देवदत्तको देखा, उन्हें उस पर दया आ गई। वे बोले: "अरे मूर्ख, हत्या करनेके विचारसे तूने यह जो दुष्ट कार्य किया है, तू नहीं जानता कि इसके कारण तू कितने पापका भागी बना है।"

२०. पैरके घावके कारण बुद्धके लिए लम्बे समय तक घूमना-फिरना असंभव हो गया। भिक्षुओंको डर लगा कि देवदत्त फिरसे बुद्धको मारनेका मौका ढूंढ़ेगा। इसलिए वे रात-दिन उनके आसपास पहरा देने लगे। जब बुद्धको इसका

१२. उनका तीसरा विरोधी देवदत्त नामका उनका एक शिष्य ही था। देवदत्त शाक्यवंशका ही था। वह ऐश्वर्यका अत्यन्त लोभी था। उसे सम्मान और बड़प्पनकी भूख थी। किसी राजकुमारको प्रसन्न करके उसने यह कार्य सिद्ध करनेका विचार किया।

देवदत्त

१३. बिम्बिसार राजाका अजातशत्रु नामक एक पुत्र था। देवदत्तने उसे फुसलाकर अपने वशमें कर लिया।

१४. बादमें वह बुद्धके पास आया और कहने लगा: "अब आप बूढ़े हो चुके हैं। इसलिए मुझे सब भिक्षुओंका नायक बना दीजिये और आप अपना शेष जीवन शान्तिपूर्वक बिताइये।"

१५. बुद्धने यह मांग स्वीकार नहीं की। उन्होंने कहा: "तू इस अधिकारके योग्य नहीं है।"

१६. देवदत्तने इसे अपना अपमान समझा। उसने मन ही मन बुद्धसे बदला लेनेका निश्चय किया।

१७. वह अजातशत्रुके पास गया और बोला: "कुमार, मनुष्य-देहका कोई भरोसा नहीं। कब मर जायेंगे, इसका ठिकाना नहीं। इसलिए जो प्राप्त करना है, सो तुरन्त ही प्राप्त कर लेना चाहिये। तू पहले मरेगा अथवा तेरा बाप पहले मरेगा, इसका कोई निश्चय नहीं। संभव है कि तुझे राज्य मिलनेसे पहले ही तू मर जाय। इसलिए राजाके मरनेका रास्ता न देखकर तू उसे मार डाल और राजा बन जा, इधर बुद्धको मार कर मैं बुद्ध बन जाता हूं।"

१८. अजातशत्रुको गुरुकी यह युक्ति अच्छी लगी। उसने बूढ़े बापको कैदखानेमें डालकर उसे भूखों मार डाला और खुद सिंहासन पर बैठ गया। अब राज्यमें देवदत्तका प्रभाव बढ़ जाय, तो इसमें आश्चर्य क्या?

लोग जितने राजासे डरते थे, उससे भी अधिक देवदत्तसे डरते थे। उसने राजाको बुद्धकी हत्या करनेके लिए प्रेरित किया। किन्तु जो भी हत्यारे गये वे बुद्धको मार ही नहीं सके। बुद्धकी निरतिशय अहिंसा और प्रेमवृत्ति, उनके वैराग्यपूर्ण अन्तःकरणसे निकलनेवाला अचूक उपदेश, उनके शत्रुओंके चित्तको भी शुद्ध कर देता था। अतएव जो-जो भी हत्यारे गये, वे सब बुद्धके शिष्य बन गये।

शिला-प्रहार

१९. इससे देवदत्त बहुत चिढ़ गया। एक बार गुरु (बुद्ध) पर्वतकी छायामें घूम रहे थे, उस समय देवदत्तने पर्वतकी धार परसे एक बड़ी शिला उनके ऊपर ढकेल दी। दैवयोगसे शिला तो उन पर नहीं पड़ी, पर उसमें से एक चिप्पी उड़कर बुद्धदेवके पैरमें लगी। बुद्धने देवदत्तको देखा, उन्हें उस पर दया आ गई। वे बोले: "अरे मूर्ख, हत्या करनेके विचारसे तूने यह जो दुष्ट कार्य किया है, तू नहीं जानता कि इसके कारण तू कितने पापका भागी बना है।"

२०. पैरके घावके कारण बुद्धके लिए लम्बे समय तक घूमना-फिरना असंभव हो गया। भिक्षुओंको डर लगा कि देवदत्त फिरसे बुद्धको मारनेका मौका ढूंढेगा। इसलिए वे रात-दिन उनके आसपास पहरा देने लगे। जब बुद्धको इसका

पता चला, तो उन्होंने भिक्षुओंसे कहा : "भिक्षुओ, मेरी देहके लिए इतनी चिंता करनेकी आवश्यकता नहीं । अपने शिष्योंसे डरकर मैं अपने शरीरकी रक्षा करना नहीं चाहता । इसलिए कोई चौकी-पहरा न दें और सब अपने-अपने काममें लग जायं ।"

हाथी पर विजय

२१. कई दिनों बाद वुद्ध स्वस्थ हुए । किन्तु देवदत्तने इस बीच उन्हें एक हाथीके पैरों तले कुचलवा देनेका विचार किया । जब वुद्ध एक गलीमें भिक्षा लेने पहुंचे, तो सामनेसे देवदत्तने राजाके एक मत्त हाथीको उन पर छुड़वा दिया । लोग इधर-उधर भागने लगे । जिसे जहां जगह दीखी, वह वहीं चढ़ गया । कुछ भिक्षुओंने वुद्धको भी एक घरके दुतल्ले पर चढ़ जानेके लिए पुकारा । किन्तु वुद्ध तो जिस तरह चल रहे थे, उसी तरह दृढ़ भावसे चलते रहे । अपनी समूची प्रेमवृत्तिको इकट्ठा करके उन्होंने अपनी समस्त करुणा अपनी आंखों द्वारा उस हाथी पर वरसाई । हाथी अपनी सूंड़ नीचे डाल कर एक पालतू कुत्तेकी तरह वुद्धके सामने खड़ा हो गया । वुद्धने उस पर हाथ फेरा और अपना प्यार प्रकट किया । हाथी गरीब बनकर वापस गजशालामें अपने स्थान पर जाकर खड़ा हो गया ।

दण्डसे, अंकुशसे या कशासे, वश करते नर पशुको यथा;
बिना दण्ड बिना शस्त्र वैसा हाथी महर्षिने ।[1]

[1] दण्डेनेके दमयन्ति अंकुसेहि कसाहि च ।
अदण्डेन असत्थेन नागो दन्तो महेसिना ॥

२२. बादमें देवदत्तने बुद्धके कुछ शिष्योंको भुलावेमें डाल कर अपना एक अलग पंथ निकाला। लेकिन वह उन्हें संभाल नही सका और सारे शिष्य वापस बुद्धकी शरणमें आ गये। इसके कुछ समय बाद देवदत्त बीमार पड़ा। उसे अपने कर्मोंके लिए पश्चात्ताप होने लगा। किन्तु बुद्धके सम्मुख उसे प्रकट करनेसे पहले ही उसकी मृत्यु हो गई।

देवदत्तकी विमुखता

२३. अजातशत्रुने भी अपने कर्मोंके लिए पश्चात्ताप किया। बादमें उसने भी बुद्धकी शरण ली और सन्मार्ग पर चलने लगा।

२४. ८० वर्षकी अवस्था तक बुद्धने धर्मोपदेश किया। समूचे मगधमें उनके इतने विहार फैल गये कि मगधका नाम ही 'विहार' पड़ गया। बुद्धके उपदेशसे हजारों लोगोंने अपना जीवन सुधारा और वे सन्मार्ग पर चलने लगे। एक बार भिक्षामें कोई अयोग्य अन्न मिल जानेसे बुद्धको अतिसारका रोग हो गया। अपनी इस बीमारीसे फिर बुद्ध उठे ही नही। गोरखपुर जिलेमें कसया नामका एक गांव है। वहासे एक मीलके फासले पर 'माथाकुंवरका कोट' नामकी एक जगह है, जहां बुद्धके कालमें कुसिनारा नामका गांव था। वहीं बुद्धका परिनिर्वाण हुआ।

परिनिर्वाण

२५. बुद्धकी मृत्युसे उनके शिष्योंमें अत्यन्त शोक छा गया। ज्ञानी शिष्योंने यह सोचकर कि सारे संस्कार अनित्य हैं, किसीके साथ स्थायी समागम रह नहीं सकता, गुरुका वियोग सहन

उत्तर-क्रिया

कर लिया। बुद्धकी अस्थियों पर कहां-कहां समाधियां बनाई जायं, इस प्रश्नको लेकर उनके शिष्योंमें बहुत कलह मचा। अन्तमें उन अस्थियोंके आठ हिस्से किये गये। उन्हें अलग-अलग स्थानोंमें गाड़कर वहां उन पर स्तूप बनवाये गये। ये अस्थियां जिस घड़ेमें रखी गई थीं, उस घड़े पर और उनकी चिताके कोयलों पर भी दो स्तूप खड़े किये गये।

स्तूप

२६. अस्थियों पर बने आठ स्तूप नीचे लिखे गांवोंमें खड़े हैं: राजगृह (पटनाके पास), वैशाली, कपिलवस्तु, अल्लकप्प, रामग्राम, वेट्ठद्वीप, पावा और कुसिनारा। बुद्धका जन्म-स्थान लुम्बिनीवन (नेपालकी तराईमें), ज्ञान-प्राप्तिका स्थान बुद्धगया, पहले उपदेशका स्थान सारनाथ (काशीके पास) और परिनिर्वाणका स्थान कुसिनारा -- बौद्ध धर्मके मुख्य तीर्थोंके रूपमें ये स्थान लम्बे समय तक पूजे गये।

बौद्ध तीर्थ

२७. इस प्रकारकी पूजाविधिके द्वारा बुद्धके अनुयायियोंने अपने गुरुके प्रति अपना आदर प्रकट किया। किन्तु स्वयं बुद्धने तो अपने अन्तिम उपदेशमें इस प्रकार कहा था: "मेरे परिनिर्वाणके बाद मेरी देहकी पूजा करनेकी खटपटमें मत पड़िये। मैंने जो सन्मार्ग बताया है, उसके अनुसार चलनेका प्रयत्न कीजिये। सावधान, उद्योगपरायण और शान्त रहिये। मेरे अभावमें मेरे धर्म और विनयको ही अपना गुरु मानिये। यह मानकर

उपसंहार

कि जिसका जन्म हुआ है उसका नाश निश्चित है, सावधानीसे व्यवहार कीजिये।"

सच्ची और झूठी पूजा

२८. बुद्धदेवकी प्रसादीके स्थानोंमें घूमकर हम उनकी पूजा नहीं कर सकेंगे। उनके प्रति अपना सच्चा आदर हम तभी व्यक्त कर सकते हैं, जब सत्यकी खोज और उसके आचरणके लिए उनके आग्रहको, इनके लिए किये गये उनके भारीसे भारी पुरुषार्थको और उनकी अहिंसा-वृत्ति, मैत्री, करुणा आदि सब सद्भावनाओंको हम अपने हृदयोंमें विकसित करें। उनके बोध-वचनोंका मनन ही उनकी पूजा और यात्रा माना जायेगा।

टिप्पणियां

टिप्पणी पहली : सिद्धार्थकी विवेक-बुद्धि — जो मनुष्य हमेशा आगे बढ़नेकी वृत्तिवाला है, वह कभी एक ही स्थितिमें पड़ा नहीं रहता। वह प्रत्येक वस्तुमें से सार-असारको खोजकर, सार जाननेके लिए आवश्यक प्रयत्न करके, असारका त्याग करता है। सारासारकी इस छलनीका नाम ही विवेक है। विवेक और विचार उन्नतिके द्वारकी दो चावियां हैं।

कुछ मनुष्य बड़े ही पुरुषार्थी होते हैं। वे भिखारीकी-सी हालतमें से धनवान बनते हैं। समाजके ठेठ निचले स्तरसे निकलकर अपने पराक्रम और बुद्धिके द्वारा ठेठ ऊंचे स्तर तक पहुंच जाते हैं और संसारमें अपार ख्याति प्राप्त करते हैं। मन्द बुद्धि माने जानेवाले विद्यार्थी केवल अपनी लगन और उद्योगके द्वारा समर्थ पंडित बन जाते हैं। यह सब पुरुषार्थकी महिमा है। पुरुषार्थके बिना कोई भी स्थिति अथवा यश प्राप्त नहीं होता।

किन्तु यदि पुरुषार्थके साथ विवेक न हो, तो उसका विकास नहीं होता। विकासकी इच्छावाला मनुष्य जिस वस्तुके लिए पुरुषार्थ करता है, उस वस्तुको वह कभी अपना अन्तिम ध्येय नहीं मानता; किन्तु उसे प्राप्त करनेके लिए अपनी जिस शक्तिका परिचय देना होगा, उस शक्तिको प्राप्त करनेकी दृष्टिसे ही वह उसे अपना ध्येय बनायेगा। धनको अथवा ख्यातिको वह अपना जीवन-सर्वस्व नहीं मानता। किन्तु धन और ख्याति प्राप्त करनेकी कला हाथमें आ जाय, उन्हें हम इस प्रकार प्राप्त कर सकते हैं, वे हमें प्राप्त हो सकते हैं, यदि हमें [illegible] तो हमें उतनी धनराशि और उतनी ख्याति मिल सकती है — इस सब देखकर और अनुभव करके वह उनका मोह छोड़

देता है और इसके बादकी भक्तिको मोड़नेमें अपनी शक्ति लगाता है।

इसके विपरीत, दूसरे लोग जीवनभर एक ही हालतमें पड़े रहते हैं। वे धनको अथवा स्वामित्व या इनसे मिलनेवाले सुखोंको ही सर्वस्व मानकर, वे दोनों प्राप्त हो जायं और इनकी रक्षामें ही सारा जीवन नष्ट हो जाय, इतना धन इकट्ठा करने पर भी उसमें से निकल ही नहीं पाते। वे यह माननेकी गलती करते हैं कि मेरा बड़प्पन और मेरा सुख धनके तथा अधिकारके कारण है। किन्तु वे यह नहीं सोच सकते कि मेरे कारण, मेरी शक्तियोंके कारण मुझे धन और बड़प्पन मिले हैं; मैं मुख्य हूं और वे गौण हैं। किसी भी कार्यक्षेत्रमें उत्तरोत्तर अपनी शक्तिका उपयोग और निरंतर विकास करना इष्ट है। मन्द सन्तोष अथवा अल्प दशामें तृप्ति उचित नहीं है; किन्तु साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिये कि कार्यक्षेत्र मुख्य वस्तु नहीं है, कार्य द्वारा जीवनका अभ्युदय मुख्य है।

जो इसे नहीं भूलते, उन्हें जीवनको किसी भी स्थितिमें बीते हुए समयके लिए शोक करनेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। उन्हें अपना समूचा जीवन ऊंचाईकी दिशामें ले जानेवाले रास्तेके समान मालूम होता है।

कार्यक्षेत्र मुख्य नहीं, इस कथनका यह अर्थ नहीं करना चाहिये कि कार्य बार-बार बदले जाय। किन्तु आवश्यक यह है कि कार्यके द्वारा अपनी प्रत्येक शक्ति और भावनाके विकास पर दृष्टि बनी रहे। धन कमाना आया, तो दान करना भी आना चाहिये; जिसे दानके लिए ख्याति प्राप्त हुई है, उसे गुप्त दानमें पारंगतता प्राप्त करनी चाहिये। धनसे प्रेम करना सीखे हैं, तो मनुष्यसे भी प्रेम करना आना चाहिये। इस प्रकार उत्तरोत्तर आगे ही बढ़ना उचित है।

टिप्पणी दूसरी: सिद्धार्थकी भिक्षावृत्ति — स्नान आदि शौच-विधि, पवित्रतापूर्वक ग्रहण किया गया सात्त्विक अन्न-जल, व्यायाम,

इन सबका फल है चित्तकी प्रसन्नता, जागृति और शुद्धि। हर किसीको यह अनुभव तो होगा ही कि नहानेसे उसका मन प्रसन्न हो जाता है, नींद भाग जाती है, स्थिरता आती है, और कुछ समय तक ऐसी पवित्रताका आभास होता है मानो त्योहारका दिन हो। ऐसा ही परिणाम शुद्ध अन्न, व्यायाम आदिके नियमोंके पालनसे आता है। आसपासका वातावरण अपने शरीर और मन पर बुरा प्रभाव न डाल सके, इसीके लिए इन सब नियमोंका पालन विहित है।

किन्तु जब यह वस्तु भुला दी जाती है, तो नियमोंका पालन ही जीवनका सर्वस्व बन बैठता है; साधन ही साध्य हो जाता है, और जब ऐसा होता है तब उन्नतिकी ओर ले जानेवाली जीवन-नौकाके लिए ये नियम जमीन तक पहुंचे हुए लंगरके समान बन जाते हैं। फिर इनसे छूटनेकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य संभव है कि इन्हें बिलकुल तोड़ डाले।

दूसरे, ये नियम कुसंस्कार, अप्रसन्नता, अजागृति आदिके विरुद्ध गढ़का काम करनेवाले हैं। जब गढ़से बाहर निकलकर लड़नेकी योग्यता आ चुकती है, तब गढ़में ही पड़े रहना मनुष्यको भाररूप लगता है। इसी प्रकार जब मैत्री, करुणा, समता आदि उदात्त भावनाओंसे चित्त भर जाता है, तब इन नियमोंके पालनसे प्रसन्नता आदिका अनुभव न होकर उद्वेगका ही अनुभव होता है। ऐसा मनुष्य उस गढ़में किस प्रकार घुसा रह सकता है?

यहाँ चित्तकी प्रसन्नताका अर्थ विषयोंका आनन्द नहीं है। कुछ लोगोंका चित्त भोग-विलाससे प्रसन्न रहता है; कुछका चित्त चाय, बीड़ी, शराब आदिसे प्रसन्न होता है और बुद्धि जाग्रत होती है; कुछ मिठाइयोंसे प्रसन्न हो जाते हैं। किन्तु यह प्रसन्नता सच्ची नहीं, यह तो विषयोंका क्षणिक आनन्द है। जब मन पर कोई बोझ न हो, शामको घूमकर आकर थोड़ा आराम कर रहे हों, उस समय जो सहज, स्वाभाविक आनन्द होता है, वही सहज प्रसन्नता है।

टिप्पणी तीसरी: समाधि — आम तौर पर लोग इस शब्दसे यह समझते हैं कि प्राणोंको रोककर लम्बे समय तक शवकी तरह रहना समाधि है। किसी एक वस्तु अथवा विचारकी भावना करते-करते ऐसी स्थिति आ पहुंचती है कि जिसमें देहका भान नहीं रहता, श्वासोच्छ्वास धीमा पड जाता है अथवा बन्द हो जाता है और केवल उस वस्तु अथवा विचारका ही दर्शन होता है। ऐसी स्थितिको समाधि कहा जाता है।

उपर्युक्त स्थितिको प्राप्त करनेके मार्गको हठयोग कहते हैं। ऐसा मालूम होता है कि सिद्धार्थने कालाम और उद्रक द्वारा इस हठयोगकी समाधि प्राप्त की थी। इस प्रकारकी समाधिसे समाधि-कालमें सुख और शान्ति प्राप्त होती है। किन्तु समाधिके उतर जाने पर मनुष्य दूसरे साधारण मनुष्यों-जैसा ही बन जाता है।

लेकिन समाधि शब्द इस एक ही अर्थमें प्रयुक्त नहीं होता। सिद्धार्थने अपने शिष्योंसे जिस समाधि-योगकी सिफारिश की है, वह हठयोगकी समाधि नहीं है। जिस वस्तु अथवा भावनाके साथ चित्त इतना तद्रूप हो जाये कि उसके सिवा वह और किसीको देखते हुए भी उसे ध्यान ही में न ले सके अथवा सर्वत्र उसीको देखे, उस विषयमें चित्तकी वह दशा समाधि-दशा कहलाती है। मनुष्यकी जो स्थिर भावना होती है, जिस भावनासे नीचे वह कभी उतरता नहीं है, समझना चाहिये कि उस भावनामें उसकी समाधि है। समाधि शब्दका धात्वर्थ भी यही है। उदाहरणसे यह अधिक स्पष्ट होगा।

लोभी आदमी जिस किसी भी चीजको देखता है, उसमें वह धनकी ही खोज करता है। घूरा हो चाहे उपजाऊ जमीन हो, नन्हामा फूल हो चाहे सोनेकी मुहर हो, उसका ध्यान इसीमें रहता है कि इनसे कितना धन मिल सकेगा। वह जिस दिशामें भी नजर दौड़ाता है, उस दिशामें धन-प्राप्तिकी संभावनाके बारेमें ही सोचता रहता है। उसे सारा संसार धनरूप ही प्रतीत होता है। उड़ते हुए पक्षियोंके पर, भाति-

भांतिकी तितलियां, हवादार पहाड़ियां, वे नदियां जिनमें से नहरें निकाली जा सकें, वे कुएं जिनमें से तेल निकाला जा सके, वे तीर्थस्थान जहां बड़ी संख्यामें लोग जाते-आते हैं—इन सबको वह धन-प्राप्तिके साधनरूपमें उत्पन्न हुए मानता है। चित्तकी ऐसी दशाको लोभ-समाधि कहा जा सकता है।

कोई रसायनशास्त्री यह अनुभव करता है कि दुनियामें जहां-तहां रासायनिक क्रियाओंके परिणामसे ही सब कुछ बना है। वह शरीरमें, पेड़में, पत्थरमें, आकाशमें सर्वत्र रसायनका ही चमत्कार देखता है। अतएव कहा जा सकता है कि उसे रसायन-समाधि सिद्ध हुई है। कोई मनुष्य जहां-तहां दुनियाको हिंसासे ही चलते देखता है। वह सब कहीं यह दर्शन करता है कि बड़ा जीव छोटे जीवको मारकर ही जी रहा है। वह दुनियामें इस नियमका अमल होते देखता है कि 'बलवान' को ही जीनेका 'अधिकार' है। हम कह सकते हैं कि उसे हिंसा-भावनाकी समाधि प्राप्त हुई है।

इसके अलावा, कोई दूसरा आदमी देखता है कि सारी दुनिया प्रेमके नियम पर ही खड़ी है। वह द्वेषको अपवाद-रूप अथवा विकृति-रूप मानता है। उसे यही दीखता है कि संसारका शाश्वत नियम—संसारको टिकानेवाला नियम—परस्पर प्रेमवृत्तिका ही है। उसका चित्त प्रेम-समाधिमें लीन है।

कोई भक्त अपने इष्टदेवकी मूर्तिको ही अणु-अणुमें प्रत्यक्षकी भांति देखता है। उसकी समाधि मूर्ति-विषयक कही जायेगी।

इस प्रकार कहना होगा कि जिस भावनामें जिसका चित्त स्थिर हुआ है, उसे उस भावनाकी समाधि कही है।

यों, हरएक मनुष्यकी अपनी कोई-न-कोई समाधि होती है। किंतु जो भावनायें मनुष्यकी उन्नति करनेवाली हैं, जो उसके चित्तको शुद्ध [illegible] [illegible] हैं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] समाधियां हैं, उन भावनाओंकी समाधि कल्याण-योग्य कही जा सकती है। उस

करते हैं। मनुष्यको इनमें से प्रत्येक उपासनाका अनुभव करना पड़ता है। वह एक ही भूमिकामें कितने समय तक स्थिर रहता है, इसका आधार उसकी विवेक-दशा पर है।

टिप्पणी पांचवीं: शरणत्रय — प्रत्येक सम्प्रदायने भिन्न-भिन्न नामोंसे इस 'शरणत्रय' की महिमाको स्वीकार किया है। इसका कारण यह है कि यह शरणत्रय स्वाभाविक ही है। गुरुमें निष्ठा, साधनामें निष्ठा और गुरुबन्धुओंमें प्रीति अथवा सन्त-समागमकी त्रिपुटीके बिना किसी मनुष्यकी उन्नति नहीं होती। बौद्ध-शरणत्रयके मूलमें यही भावना है। स्वामीनारायण सम्प्रदायमें इन्हीं तीन भावनाओंको निश्चय (सहजानन्द स्वामीमें निष्ठा), नियम (सम्प्रदायके नियमोंका पालन), और पक्ष (सत्संगियोंके प्रति बन्धुभाव) के नामसे पहचाना गया है।

बुद्धं शरणं गच्छामि। असलमें इस शरणकी यथार्थता तो बुद्ध प्रत्यक्ष थे तभी तक थी। अपने गुरुकी पूर्णताके विषयमें दृढ़ श्रद्धा न हो, तो शिष्य उन्नति कर ही नहीं सकता। जब तक ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरुकी प्राप्ति नहीं होती, तभी तक मुमुक्षुको किन्हीं देवोंमें अथवा भूतकालके अवतारोंकी भक्तिमें रुचि रहती है। गुरु-प्राप्तिके बाद गुरु ही परम-दैवत — परमेश्वर बन जाता है। वेदमूलक धर्मोंमें अर्थात् अनुभव अथवा ज्ञानके आधार पर रचे गये सब धर्मोंमें गुरुको ही श्रेष्ठ दैवत अर्थात् इष्टदेव माना है।

किन्तु जब-जब कोई गुरु सम्प्रदायकी स्थापना कर जाता है, तब-बाद प्रत्यक्ष गुरुकी उपासनामें से वह सम्प्रदाय किसी परोक्ष अवतार अथवा देवकी उपासनामें बदल जाता है। समय पाकर आत्मज्ञानी परमेश्वरका स्थान प्राप्त करता है और वह हमारा शास्त्रकार है, श्रद्धाके आधार पर सम्प्रदायकी रचना होती है। उसके बाद यह सम्प्रदायकी भावना एक भिन्न ही स्वरूप धारण कर लेती है।

कोई यह न माने कि ये तीन शरण आध्यात्मिक मार्गके लिए ही उपकारी हैं। कोई भी संस्था या कार्य नेता अथवा आचार्यके प्रति श्रद्धा, उसके नियमोंका पालन और उसमें सम्मिलित दूसरे लोगोंके प्रति बन्धुभावके बिना सफल नहीं हो सकता। 'अपनी संस्थाका अभिमान' इन शब्दोंमें ये तीन भावनायें ही पिरोयी हुई हैं; इसीलिए ऊपर कहा है कि ये शरणत्रय स्वाभाविक हैं।

आजके जमानेमें कहीं-कहीं गुरुभक्तिके बारेमें उपेक्षा अथवा अनादरकी भावना पाई जाती है। उन्नतिकी इच्छा रखनेवालेको इस वृत्तिको अपनानेके लोभमें कभी नहीं पड़ना चाहिये। आर्यावर्तके धर्म अनुभवके मार्ग हैं। अनुभव कभी भी वाणी द्वारा ठीक-ठीक प्रकट नहीं किये जा सकते। पुस्तकें उन्हें और भी कम प्रकट कर पाती हैं। यदि पुस्तकोंसे ही सारा ज्ञान प्राप्त हो सकता हो, तो विद्यार्थीको ककहरा, बारहखड़ी और सौ तथा हजार तककी गिनती सिखाकर पाठशालायें बन्द की जा सकती हैं। किन्तु पुस्तक कभी शिक्षकका स्थान ले ही नहीं सकती; इसी प्रकार शास्त्र अनुभव-सम्पन्न सन्तकी बराबरी कर ही नहीं सकते।

दूसरे, भक्ति — पूज्यभाव, आदर — मनुष्यकी एक स्वाभाविक वृत्ति है। कम या अधिक अंशमें यह हरएकमें होती है। जैसे-जैसे यह परोक्ष अथवा कल्पनाओंसे निकलकर प्रत्यक्षमें प्रकट होती है, वैसे-वैसे पूर्णताके अधिक समीप पहुंचती है। ऐसी प्रत्यक्ष भक्तिकी भूखके पूरी तरह खुलने और उसकी तृप्ति हो जाने पर ही मनुष्य निरालम्ब शान्तिकी दशामें पहुंच सकता है। गुरु-भक्तिके बिना यह भूख पूरी तरह तृप्त नहीं हो सकती। माता-पिता प्रत्यक्ष रूपसे पूज्य हैं, किन्तु उनके बारेमें अपूर्णताका भान होनेसे उनकी अच्छी भक्ति करनेके बाद भी भक्तिकी भूख बनी ही रहती है। उसे तृप्त करनेके लिए जब तक सद्गुरुकी प्राप्ति न हो, मनुष्यको परोक्ष देव आदिकी साधनाका आश्रय लेना पड़ता है। इस प्रकार गुरु ज्ञान-प्राप्तिके लिए आवश्यक है या नहीं, इस विचारको एक ओर रख दें, तो भी यह कहा जा सकता है कि उसके बिना

मनुष्यकी भक्ति-सम्वन्धी भावनाका पूर्ण विकास होकर उसके वादकी भावनामें प्रवेश नहीं हो सकता।

टिप्पणी छठी : वर्णकी समानता — समाजमें वर्ण-व्यवस्थाका होना एक वात है और वर्णोंके वीच ऊंच-नीचपनका अभिमान होना दूसरी वात है। वर्ण-व्यवस्थाके विरुद्ध किसी भी सन्तने आपत्ति नहीं उठाई है। विद्याकी, शास्त्रकी, अर्थकी अथवा कला-कौशलकी उपासना करनेवाले मनुष्योंके समाजमें अलग-अलग कर्म हों, तो इसमें किसीको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये; किन्तु जव इन कर्मोंके कारण ऊंच-नीचके भेद खड़े करके वर्णका अभिमान किया जाता है, तो सन्त उसके विरोधमें कटाक्ष करते ही हैं। इस अभिमानके विरुद्ध आवाज उठानेवालोंमें अकेले बुद्ध ही नहीं थे। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, वल्लभाचार्य, चैतन्यदेव, नानक, कवीर, नरसिंह महेता, सहजानन्द स्वामी आदि सन्तोंमें से कोई भी ऐसे नहीं थे, जिन्होंने वर्णके अभिमानकी निन्दा न की हो। इनमें से कइयोंने तो, जहां तक उनका अपना सम्वन्ध था, रूढ़ियोंके वन्धन काट ही डाले थे। सवने इन रूढ़ियोंको तुड़वानेका आग्रह नहीं किया। इसके दो कारण हो सकते हैं : एक, जिस प्रेम-भावनाके वलसे स्वयं उन्हें इन नियमोंमें वंधकर रहना असंभव लगा, उस भावनाके विकासके विना इन रिवाजोंको तोड़नेसे कोई लाभ नहीं; और दूसरा, रूढ़ियोंके संस्कार इतने वलवान होते हैं कि वे आसानीसे जीते नहीं जा सकते।

महावीर

'महावीर' के विषयमें दो शब्द

खेद है कि मैं महावीरका चरित्र आवश्यक विस्तारके साथ नहीं लिख सका। 'त्रिषष्टिशलाका पुरुष' में उनकी जीवनी विस्तारपूर्वक दी गई है, किन्तु उसमें दिये गये वृत्तान्तोंमें से कितने वृत्तान्त सच हैं, यह कहना शंकास्पद है। 'आजीवक' आदिकी बातें एकपक्षीय और साम्प्रदायिक झगड़ोंसे रंगी हुई मालूम होती हैं। सचमुच यह शोचनीय बात ही है कि हिन्दुस्तानमें जैन धर्मका जो महत्त्व है, उसे देखते हुए महावीरके विषयमें बहुत थोड़ी विश्वसनीय जानकारी मिल पाती है।

चूंकि इस पुस्तकका उद्देश्य जैन धर्मके तत्त्वज्ञानको समझाना नहीं है, इसलिए मैंने उसकी चर्चा नहीं की है।

इसके कारण 'महावीर' वाला खंड बहुत छोटा मालूम होता है। फिर भी मैं मानता हूं कि जितना वह है उतना उस महापुरुषको सच्चे रूपमें प्रकट करता है।

इस खंडकी रचनामें पंडित सुखलालजी और श्री रमणीकलाल मगनलाल मोदीकी जो सहायता मुझे मिली है, उसके लिए मैं इन दोनोंका आभारी हूं।

कि० घ० म०

गृहस्थाश्रम

जन्म

बुद्धदेवके जन्मके कुछ वर्ष पहले उसी मगध प्रदेशमें और उसी इक्ष्वाकु कुलकी एक शाखामें जैनोंके एक तीर्थंकर श्री महावीरका जन्म हुआ था। उनके पिता सिद्धार्थ क्षत्रियकुण्ड नामक एक गांवके राजा थे। उनकी माताका नाम त्रिशला था। वे तीर्थंकर पार्श्वनाथ द्वारा स्थापित जैन धर्मके अनुयायी थे।[1] महावीरका जन्म चैत्र सुदी १३ को हुआ था। उनके निर्वाण-कालसे जैन लोगोंका वीर संवत् शुरू होता है और वह विक्रम संवत्से ४७० वर्ष पुराना है। माना जाता है कि निर्वाणके समय महावीरकी उमर ७२ वर्षकी थी। अतएव

---

१. जैन धर्म महावीरसे पहलेका है। यह कहना कठिन है कि यह कितना पुराना है, किन्तु महावीरसे पहले पार्श्वनाथ तीर्थंकर माने जाते थे और उनका सम्प्रदाय चलता था। बौद्ध, जैन और ब्राह्मण तीनों धर्मोंमें चौबीस बुद्ध, चौबीस तीर्थंकर और चौबीस अवतार गिनाये जाते हैं। इनमें से चौबीस बुद्धोंकी बात काल्पनिक ही मालूम होती है। यह मानने योग्य नहीं कि गौतम बुद्धसे पहले कोई बौद्ध धर्म था। तीर्थंकरों और अवतारोंमें से ऋषभदेव-जैसे कुछ नाम दोनों धर्मोंमें समान रूपसे पाये जाते हैं। जैनियोंका विश्वास है कि तीर्थंकर नेमीनाथ श्रीकृष्णके चचाके लड़के थे। किन्तु इन सब बातोंमें ऐतिहासिक आधार कितना है और बादमें जोड़ी गई बातें कितनी हैं, इसका निश्चय करना कठिन है। ऐसा मालूम होता है कि चौबीसकी संख्या किसी एक धर्मने काल्पनिक रूपसे शुरू की है और दूसरोंने उसका अनुकरण किया है।

यह कहा जा सकता है कि उनका जन्म विक्रम संवत्से ५४२ वर्ष पहले हुआ था ।

बाल-स्वभाव मातृ-भक्ति

२. महावीरका जन्म-नाम वर्धमान था। वे बचपनसे ही अत्यन्त मातृभक्त[1] और दयालु स्वभावके थे तथा उनकी रुचि वैराग्य और तपकी ओर थी ।

पराक्रम-प्रियता

३. वर्धमान बचपनमें क्षत्रियको शोभा देनेवाले खेलोंके बहुत शौकीन थे । उनका शरीर ऊंचा और बलवान था और उनका स्वभाव पराक्रम-प्रिय था । बचपनसे ही डरको तो उन्होंने कभी अपने हृदयमें स्थान दिया ही नहीं । एक बार ८ सालकी उमरमें वे कुछ लड़कोंके साथ खेलते-खेलते जंगलमें जा पहुंचे । वहां एक पेड़के नीचे एक भयंकर सांप पड़ा हुआ था । दूसरे लड़के उसे देखकर भागने लगे, किन्तु ८ सालके वर्धमानने उसे एक मालाकी तरह ऊंचा उठाकर दूर फेंक दिया ।

बुद्धिमत्ता

४. पराक्रमकी तरह ही पढ़ने-लिखनेमें भी वे आगे थे । कहा जाता है कि ९ वर्षकी उमरमें तो उन्होंने व्याकरण सीख लिया था ।

विवाह

५. सात हाथ ऊंचे शरीरवाले वर्धमान यथासमय युवावस्थाको प्राप्त हुए । चूंकि बचपनसे ही उनकी वृत्ति वैराग्य-प्रिय थी, इसलिए संन्यास उनके जीवनका लक्ष्य था । उनके माता-पिता उनसे विवाहके लिए बहुत आग्रह करते थे, किन्तु वे विवाहके

१. [illegible] ।

लिए राजी नहीं होते थे। पर अन्तमें उनकी माताने अत्यन्त आग्रह करना शुरू किया और वे उन्हें अपने संतोषके लिए विवाह कर लेनेको समझाने लगीं। अविवाहित रहनेके उनके आग्रहके कारण माता बहुत दुःखी रहती थी और वर्धमानका कोमल स्वभाव इस दुःखको देख नहीं सकता था। अतएव अन्तमें माताके संतोषके लिए उन्होंने यशोदा नामक एक राजकुमारीके साथ विवाह किया। यशोदाके प्रियदर्शना नामक एक पुत्री पैदा हुई। आगे चलकर उसका विवाह जमालि नामक एक राजकुमारके साथ हुआ।

माता-पिताका अवसान

६. जब वर्धमान २८ वर्षके हुए, तो उनके माता-पिताने जैन-भावनाके अनुसार अनशन-व्रत करके देह-त्याग किया। वर्धमानके बड़े भाई नन्दिवर्धन राजगादी पर बैठे।

गृह-त्याग

७. इसके कोई २ वर्ष बाद यह सोचकर कि अब संसारमें रहनेका कोई अर्थ नहीं है, जिस संन्यास-जीवनके लिए उनका चित्त अधीर बना हुआ था, उसे उन्होंने स्वीकार कर लेनेका निश्चय कर लिया। अपनी सारी सम्पत्ति उन्होंने दानमें दे डाली। केश-लोचन करके और केवल एक वस्त्र पहनकर उन्होंने राज्य छोड़ दिया और तप करने निकल गये।

आधे वस्त्रका दान

८. दीक्षा लेनेके बाद वे कहीं जा रहे थे कि इतनेमें एक वृद्ध ब्राह्मण उनके पास आया और उनसे भिक्षा मांगने लगा। वर्धमानके पास पहने हुए वस्त्रके सिवा और कुछ रहा नहीं

था। इसलिए उन्होंने उसीका आधा हिस्सा फाड़कर उस ब्राह्मणको दे दिया। ब्राह्मणने अपने गांव पहुंचनेके बाद उस वस्त्रको उसके पल्ले तैयार करवानेके लिए एक सीनेवालेको दिया। सीनेवालेने देखा कि वस्त्र मूल्यवान है, इसलिए उसने ब्राह्मणसे कहा, 'अगर इसका बाकी आधा भाग मिल जाये, तो मैं इसे इस तरह जोड़ दूं कि किसीको भी जोड़का पता न चले। बादमें इस वस्त्रको बेचनेसे इसके बहुत दाम मिलेंगे और उन्हें हम बराबर-बराबर बांट लेंगे।' इससे लालचमें आकर ब्राह्मण फिर वर्धमानकी खोजमें निकल पड़ा।

साधना

महावीर-पद

अपने गृह-त्यागके क्षणसे ही वर्धमानने यह निश्चय किया था कि वे किसी पर क्रोध नहीं करेंगे और क्षमाको अपने जीवनका व्रत मानेंगे। साधारण वीर बड़े-बड़े पराक्रम कर सकते हैं; सच्चे क्षत्रिय विजय मिलनेके बाद क्षमाका परिचय दे सकते हैं; किन्तु वीर भी क्रोधको नहीं जीत पाते और जब तक पराक्रम करनेकी शक्ति होती है, तब तक क्षमा नहीं कर पाते। वर्धमानने पराक्रमी होते हुए भी क्रोधको जीता और शक्तिके रहते भी वे क्षमाशील बने, इस कारण उनका नाम महावीर पड़ा।

साधनाका बोध

२. घरसे निकलनेके दिनसे अगले १२ वर्षों तकका महावीरका जीवन इस बातका उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है कि तपश्चर्याका उग्रसे उग्र स्वरूप कैसा हो सकता है, सत्यकी शोधके लिए मुमुक्षुकी व्याकुलता कितनी तीव्र होनी चाहिये, सत्य, अहिंसा, क्षमा, दया, ज्ञान और योगकी व्यवस्थिति, अपरिग्रह, शान्ति, दम आदि दैवी गुणोंका उत्कर्ष कहां तक किया जा सकता है और चित्तकी शुद्धि किस प्रकारकी होनी चाहिये।

निश्चय

३. यहां महावीरके जीवनके इस अंशका ब्यौरेवार विवरण देना असंभव है। उनमें से कुछ प्रसंगोंका ही उल्लेख किया जा सकेगा। उन्होंने अपने साधना-कालमें व्यवहार-सम्बन्धी कुछ निश्चय

कर लिये थे। उनमें पहला निश्चय यह था कि दूसरोंकी सहायताकी अपेक्षा न रखना, बल्कि अपने पुरुषार्थ और उत्साहसे ही ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पाना। उनका विचार यह था कि दूसरोंकी मददसे ज्ञान प्राप्त हो ही नहीं सकता। उनका दूसरा निश्चय यह था कि जो-जो भी उपसर्ग[1] और परिषह[2] आ पड़ें, उनसे बचनेका प्रयत्न न करना। अभिप्राय यह था कि उपसर्गों और परिषहोंको सहन करनेसे ही पाप-कर्मोंका क्षय होता है और चित्त शुद्ध बनता है। दुःखमात्र पाप-कर्मका फल है, अतएव उसके आ पड़ने पर उसे दूर करनेका यत्न करना आजके दुःखको केवल भविष्य पर टालनेके समान है। इन फलोंको भोगे बिना कभी छुटकारा मिलता ही नहीं।

सहे गये उपसर्ग और परिषह

४. इस कारण ये १२ वर्ष उन्होंने ऐसे प्रदेशोंमें घूम-घूम कर बिताये कि जहां उन्हें अधिकसे अधिक कष्ट प्राप्त हों। वे वहां जान-बूझकर जाते थे, जहांके लोग क्रूर, आतिथ्यहीन, संतद्रोही, गरीबोंको सतानेवाले और बिना कारण दूसरोंको पीड़ा पहुंचानेमें आनन्दका अनुभव करनेवाले होते थे। इस प्रकारके लोग उन्हें मारते, भूखा रखते, उन पर कुत्ते छोड़ते, रास्तेमें अनुचित मजाक करते, उनके सामने [illegible] बरताव करते और उनकी साधनामें विघ्न डालते थे। [illegible] उन्हें सर्दी, गर्मी, आंधी, तूफान, वर्षा आदि प्राकृतिक

१. अन्य प्राणियों द्वारा [illegible] विघ्न और कष्ट।
२. प्राकृतिक [illegible]।

उस दिनसे लेकर अपने अन्त समय तक महावीर वस्त्र-रहित[1] दशामें रहे ।

लाढ़में विचरण

७. कहा जाता है कि महावीरको सबसे अधिक कष्ट और क्रूरता लाढ[2] नामके प्रदेशमें सहनी पड़ी । यह जानकर कि वहांके लोग अत्यन्त आसुरी हैं, महावीर उधर लम्बे समय तक घूमे थे ।

तपका प्रभाव

८. महावीरका बरताव ऐसा था मानो वे ख्यातिसे दूर ही रहना चाहते हो । वे किसी जगह लम्बे समय तक रहते नहीं थे । जहां मान-सम्मानकी संभावना दीखती वहांसे वे आगे बढ़ जाते थे । उनके चित्तको अभी शान्ति प्राप्त नहीं हुई थी, फिर भी उनकी लम्बी तपश्चर्याका स्वाभाविक प्रभाव लोगों पर पड़ने लगा और उनकी अनिच्छा होते हुए भी वे लोगोंमें पूजनीय होते चले गये ।

---

१. अब तक महावीर साम्बर — वस्त्र-सहित — थे, अब वे निरम्बर हुए। इसके कारण जैनियोंमें महावीरकी उपासनाके दो भेद हो गये हैं। जो लोग वस्त्र-सहित महावीरकी उपासना करते हैं, वे श्वेताम्बर और जो निर्वस्त्र महावीरकी उपासना करते हैं, वे दिगम्बर कहलाते हैं। अब दिगम्बर जैन साधु क्वचित् ही पाये जाते हैं।

२. इसे कुछ लोग 'लाट' समझते हैं और मानते हैं कि यह गुजरातमें है। किन्तु यह नाम-सादृश्यके कारण उत्पन्न हुई भ्रान्ति है। असलमें आजकल जो 'राढ़' नामका प्रदेश है (भागीरथीके तटके पासवाला बंगालका वह भाग, जिसमें मुर्शिदाबाद, अजीमगंज आदि बसे हुए हैं।), वही यह लाढ़ है।

कुलपतिने इस लापरवाहीके लिए महावीरको उलाहना दिया।

पंचव्रत

इस पर महावीरने सोचा कि उनके कारण दूसरे तपस्वियोंके बीच अप्रीति पैदा होती है, इसलिए उन्हें वहां नहीं रहना चाहिये। उसी समय उन्होंने नीचे लिखे पांच व्रत धारण किये: (१) जहां दूसरेको अप्रीति हो वहां न रहना; (२) जहां रहना वहां सदा कायोत्सर्ग[1] करके ही रहना; (३) साधारणतया मौन रहना; (४) भोजन हाथमें ही करना; और (५) गृहस्थकी विनय न करना।[2]

संन्यास लेनेके बाद तुरन्त ही उन्हें दूसरोंके मनकी बात जान लेनेकी सिद्धि प्राप्त हुई और उन्होंने उस सिद्धिका कुछ उपयोग भी किया।

दिगम्बर दशा

९. इस वर्षके अन्तमें ही एक बार एक बाड़के संकड़े रास्तेसे जाते हुए उनके पासका बाकी बचा हुआ आधा वस्त्र कांटोंमें उलझ गया। यह सोच कर कि जो इस प्रकार छूट गया है वह उपयोगी होगा ही नहीं, उसे वहीं छोड़कर महावीर आगे बढ़ गये। उस ब्राह्मणने वह टुकड़ा उठा लिया।

१. कायोत्सर्ग = कायाका उत्सर्ग। अर्थात् शरीरकी प्रवृत्ति वर्जित करके ध्यानस्थ रहना। उसकी रक्षाके लिए किसी प्रकारकी प्रवृत्ति—जैसे [illegible] बनाना, कम्बल ओढ़ना, [illegible] आदि न करना।

२. अपनी आवश्यकताओंके लिए गृहस्थ पर आश्रित न रहना [illegible] खुशामद न करना।

उस दिनसे लेकर अपने अन्त समय तक महावीर वस्त्र-रहित[1] दशामें रहे ।

७. कहा जाता है कि महावीरको सबसे अधिक कष्ट और क्रूरता लाढ[2] नामके प्रदेशमें सहनी पड़ी । यह जानकर कि वहांके लोग अत्यन्त आसुरी हैं, महावीर उधर लम्बे समय तक घूमे थे ।

लाढ़में विचरण

८. महावीरका बरताव ऐसा था मानो वे ख्यातिसे दूर ही रहना चाहते हों । वे किसी जगह लम्बे समय तक रहते नहीं थे । जहां मान-सम्मानकी संभावना दीखती वहांसे वे आगे बढ़ जाते थे । उनके चित्तको अभी शान्ति प्राप्त नहीं हुई थी, फिर भी उनकी लम्बी तपश्चर्याका स्वाभाविक प्रभाव लोगों पर पड़ने लगा और उनकी अनिच्छा होते हुए भी वे लोगोंमें पूजनीय होते चले गये ।

तपका प्रभाव

---

१. अब तक महावीर साम्बर — वस्त्र-सहित — थे, अब वे निरम्बर हुए। इसके कारण जैनियोंमें महावीरकी उपासनाके दो भेद हो गये हैं। जो लोग वस्त्र-सहित महावीरकी उपासना करते हैं, वे श्वेताम्बर और जो निर्वस्त्र महावीरकी उपासना करते हैं, वे दिगम्बर कहलाते हैं। अब दिगम्बर जैन साधु क्वचित् ही पाये जाते हैं।

२ इसे कुछ लोग 'लाट' समझते हैं और मानते हैं कि यह गुजरातमें है। किन्तु यह नाम-सादृश्यके कारण उत्पन्न हुई भ्रांति है। असलमें आजकल जो 'राढ' नामका प्रदेश है (भागीरथीके तटके पासवाला बंगालका वह भाग, जिसमें मुर्शिदाबाद, अजीमगंज आदि बसे हुए हैं।), वही यह लाढ़ है।

कुलपतिने इस लापरवाहीके लिए महावीरको उलाहना दिया।

पंचव्रत

इस पर महावीरने सोचा कि उनके कारण दूसरे तपस्वियोंके बीच अप्रीति पैदा होती है, इसलिए उन्हें वहां नहीं रहना चाहिये। उसी समय उन्होंने नीचे लिखे पांच व्रत धारण किये: (१) जहां दूसरेको अप्रीति हो वहां न रहना; (२) जहां रहना वहां सदा कायोत्सर्ग[1] करके ही रहना; (३) साधारणतया मौन रहना; (४) भोजन हाथमें ही करना; और (५) गृहस्थसे विनय न करना।[2]

संन्यास लेनेके बाद तुरन्त ही उन्हें दूसरोंके मनकी बात जान लेनेकी सिद्धि प्राप्त हुई और उन्होंने उस सिद्धिका कुछ उपयोग भी किया।

दिगम्बर दशा

६. इस वर्षके अन्तमें ही एक बार एक झाड़के संकड़े रास्तेसे जाते हुए उनके पासका बाकी बचा हुआ आधा वस्त्र कांटोंमें उलझ गया। यह सोच कर कि जो इस प्रकार छूट गया है वह उपयोगी होगा ही नहीं, उसे वहीं छोड़कर महावीर आगे बढ़ गये। उस ब्राह्मणने वह टुकड़ा उठा लिया।

१. कायोत्सर्ग = कायाका उत्सर्ग। अर्थात् शरीरकी प्रवृत्ति बंद करके ध्यानस्थ रहना। उसकी रक्षाके लिए किसी प्रकारकी कोशिश—जैसे ओढ़नी बनाना, कम्बल ओढ़ना, तापना आदि न करना।

२. अपनी आवश्यकताओंके लिए गृहस्थ पर आश्रित न रहना और नमस्कार न करना।

उस दिनसे लेकर अपने अन्त समय तक महावीर वस्त्र-रहित[1] दशामें रहे।

लाढ़में विचरण

७. कहा जाता है कि महावीरको सबसे अधिक कष्ट और क्रूरता लाढ़[2] नामके प्रदेशमें सहनी पड़ी। यह जानकर कि वहांके लोग अत्यन्त आसुरी हैं, महावीर उधर लम्बे समय तक घूमे थे।

तपका प्रभाव

८. महावीरका बरताव ऐसा था मानो वे ख्यातिसे दूर ही रहना चाहते हो। वे किसी जगह लम्बे समय तक रहते नहीं थे। जहां मान-सम्मानकी संभावना दीखती वहांसे वे आगे बढ़ जाते थे। उनके चित्तको अभी शान्ति प्राप्त नहीं हुई थी, फिर भी उनकी लम्बी तपश्चर्याका स्वाभाविक प्रभाव लोगों पर पड़ने लगा और उनकी अनिच्छा होते हुए भी वे लोगोंमें पूजनीय होते चले गये।

---

१. अब तक महावीर साम्बर—वस्त्र-सहित—थे, अब वे निरम्बर हुए। इसके कारण जैनियोंमें महावीरकी उपासनाके दो भेद हो गये हैं। जो लोग वस्त्र-सहित महावीरकी उपासना करते हैं, वे श्वेताम्बर और जो निर्वस्त्र महावीरकी उपासना करते हैं, वे दिगम्बर कहलाते हैं। अब दिगम्बर जैन साधु क्वचित् ही पाये जाते हैं।

२. इसे कुछ लोग 'लाट' समझते हैं और मानते हैं कि यह गुजरातमें है। किन्तु यह नाम-सादृश्यके कारण उत्पन्न हुई भ्रान्ति है। असलमें आजकल जो 'राढ़' नामका प्रदेश है (भागीरथीके तटके पासवाला बंगालका वह भाग, जिसमें मुर्शिदाबाद, अजीमगंज आदि बसे हुए हैं।), यही वह लाढ़ है।

अन्तिम उपसर्ग

९. इस प्रकार १२ वर्ष बीत गये। १२ वें वर्षमें उन्हें सबसे कड़ा उपसर्ग सहना पड़ा। वे एक गांवमें एक पेड़के नीचे ध्यानस्थ होकर बैठे थे कि इतनेमें एक ग्वाला अपने बैलोंको चराता हुआ उधर आ निकला। अचानक किसी कामकी याद आ जानेसे वह बैलोंको महावीरके हवाले करके गांवमें वापस गया। चूंकि महावीर ध्यानस्थ थे, इसलिए उन्होंने ग्वालेकी कही हुई कोई बात सुनी नहीं। किन्तु ग्वालेने उनके मौनको सम्मतिके रूपमें मान लिया। बैल चरते-चरते दूर निकल गये। कुछ देर बाद जब ग्वाला आया, तो उसने देखा कि बैल नहीं हैं। ग्वालेने महावीरसे पूछा, पर ध्यानस्थ होनेके कारण उन्होंने कुछ सुना नहीं। इस पर ग्वालेको महावीर पर जोरका गुस्सा आ गया। उसने उनके कानमें एक प्रकारकी भयंकर यातना पहुंचाई।[1] एक वैद्यने महावीरके कान अच्छे किये, पर वह चोट इतनी पीड़ा पहुंचानेवाली थी कि अत्यन्त धैर्यशील महावीर भी वैद्यकी शस्त्रक्रियाके समय चीख उठे थे।

बोध-प्राप्ति

१०. इस अन्तिम उपसर्गको सहनेके बाद, बारह वर्षोंके कठोर तपके अन्तमें, वैशाख शुक्ला दशमीके दिन जाम्भक नामक गांवके पारवाले एक वनमें महावीरको ज्ञान प्राप्त हुआ और [illegible] चित्तको शान्ति मिली।

१. [illegible] कहा जाता है कि कानमें [illegible] ठोक दीं। [illegible] [illegible] पहुंचाई।

उपदेश

महावीरने जाम्भक गावसे ही अपना उपदेश शुरू किया। उनके पहले उपदेशका सार यह था: कर्मसे ही बन्धन और मोक्ष प्राप्त होते हैं; अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह मोक्षके साधन हैं।

पहला उपदेश

२. सब धर्मोका मूल दया है, किन्तु दयाके पूर्ण उत्कर्षके लिए क्षमा, नम्रता, सरलता, पवित्रता, संयम, संतोष, सत्य, तप, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, इन दस धर्मोका सेवन करना चाहिये।

दस सद्धर्म

इनके कारण और लक्षण नीचे लिखे अनुसार है:

(१) क्षमा-रहित मनुष्य दयाका पालन भलीभांति नही कर सकता; अतएव जो मनुष्य क्षमा करनेमें तत्पर है, वह धर्मका पालन उत्तम रीतिसे कर सकता है।

(२) सब सद्गुण विनयके अधीन है; और विनय नम्रतासे प्राप्त होता है; जो पुरुष नम्र है, वह सर्वगुण-संपन्न बनता है।

(३) बिना सरलताके कोई पुरुष शुद्ध नहीं बन सकता। अशुद्ध जीव धर्मका पालन नहीं कर सकता। बिना धर्मके मोक्ष नहीं और बिना मोक्षके सुख नही।

(४) अतएव बिना सरलताके पवित्रता नही, और बिना पवित्रताके मोक्ष नहीं।

(५–६) विषय-सुखोंके त्याग द्वारा जिन्होंने भय और राग-द्वेषको तजा है, ऐसे त्यागी पुरुष निर्ग्रन्थ (संयमी और संतोषी) कहलाते हैं।

(७) तन, मन और वचनकी एकता रखना और पूर्वापर अविरुद्ध वचनका उच्चारण करना, यह चार प्रकारका सत्य है।

(८) उपवास, आहारमें दो–चार कौर कम खाना, आजीविकाका नियम, रस-त्याग, शीत-उष्ण आदिको समवृत्तिसे सहना और स्थिरासनसे रहना, यह छह प्रकारका बाह्य तप है। प्रायश्चित्त, ध्यान, सेवा, विनय, कायोत्सर्ग और स्वाध्याय, यह छह प्रकारका अभ्यन्तर तप है।

(९) मन, वचन और काया द्वारा सम्पूर्ण संयमसे रहना ब्रह्मचर्य है।

(१०) निःस्पृहता ही अपरिग्रह है।

इन दस धर्मोंके सेवनसे भय, राग और द्वेष अपने-आप नष्ट होते हैं और ज्ञानकी प्राप्ति होती है।

स्वाभाविक उन्नति-पंथ

२. शान्त, दान्त, व्रत-नियममें सावधान और विरल-वत्सल मोक्षार्थी मनुष्य निष्कपट भावसे जो-जो कार्य करता है, उससे गुणकी वृद्धि होती है। जिस पुरुषकी श्रद्धा पवित्र है, उसे शुभ और अशुभ दोनों वस्तुयें शुभ विचारके कारण [illegible] [illegible] रूपमें ही फल देती है।

४. हे मुनि,[१] जन्म और जराके दुःख देख। यह सोचकर कि जिस तरह तुझे सुख प्रिय है, उसी तरह सब जीवोंको सुख प्रिय है, किसी भी जीवको मारना मत और दूसरेसे मरवाना मत। लोगोंके दुःखोंको जाननेवाले सब ज्ञानी पुरुषोंने मुनियों, गृहस्थों, रागियों, त्यागियों, भोगियों और योगियोंसे यह पवित्र और शाश्वत धर्म कहा है कि 'किसी भी प्रकारके जीवकी हत्या मत करो, उस पर अधिकार मत चलाओ, उसे अधीन मत करो और उसे हैरान मत करो।' पराक्रमी पुरुष संकटोंमें फंसने पर भी दया नहीं छोड़ता।

अहिंसा परमो धर्मः

५. हे मुनि, अन्दर ही युद्ध कर; बाहरके दूसरे युद्धकी क्या आवश्यकता है? युद्धकी ऐसी सामग्री मिलनी बहुत कठिन है।

दारुणतम युद्ध

६. विवेक हो तो गांवमें रहने पर भी धर्म है और जंगलमें रहने पर भी धर्म है। विवेक न हो, तो दोनों निवास अधर्म-रूप ही हैं।

विवेक ही सच्चा साथी

७. महावीरका स्याद्वाद तत्त्व-चिंतनके क्षेत्रमें उनकी बड़ीसे बड़ी देन मानी जाती है। विचारमें सन्तुलन बनाये रखना कठिनसे कठिन काम है। बड़ेसे बड़े विचारक भी जब किसी विषयका विचार करने बैठते हैं, तो अपने पूर्वाग्रहोंके वश हो जाते हैं और एक ओर खिंच जाते हैं। वस्तुतः जगतके सब व्यावहारिक

स्याद्वाद

१. मुनि अर्थात् विचारशील मनुष्य।

सिद्धांत अमुक मर्यादा अथवा अर्थमें ही सच्चे होते हैं। अतएव यह हो सकता है कि भिन्न मर्यादामें या भिन्न अर्थमें उनसे उलटे सिद्धांत सच हों। उदाहरणके लिए, 'सब जीव समान हैं' यह एक बड़ा व्यवहार्य सिद्धांत है, किन्तु व्यवहारमें लानेका प्रयत्न करते ही यह सिद्धांत मर्यादित हो जाता है। जैसे, जहां गर्भ अथवा माता दोमें से एकको ही बचाया जा सकता हो, समुद्री तूफानमें जहाजके टूटने पर संकटके समय काममें आनेवाली नावें पर्याप्त संख्यामें न हों, तो ऐसे समय नावोंका लाभ पहले बच्चों और स्त्रियोंको देना अथवा पुरुषोंको देना यह प्रश्न हो, शेर भूखों मर रहा हो और गायको पकड़नेकी तैयारीमें हो, उस समय गायको छुड़ाने अथवा न छुड़ानेकी समस्या सम्मुख हो, तो इन सब परिस्थितियोंमें हम 'सब जीव समान हैं' इस सिद्धांतका अमल नहीं कर सकते; बल्कि हमें ऐसा व्यवहार करना पड़ता है, जिससे यह लगे कि मानो 'जीवोंमें तर-तमके भेदवाला' सिद्धांत सच है। किन्तु इसका अर्थ यह हुआ कि 'सब जीव समान हैं' का सिद्धांत अमुक मर्यादा और अमुक अर्थमें ही सच है। यही बात अन्य अनेक सिद्धांतोंके बारेमें कही जा सकती है।

८. किन्तु बहुतसे विचारक और आचारक मर्यादाका अतिरेक करते हैं, अथवा मर्यादाको अस्वीकार करते हैं, अथवा स्वीकार करने पर भी उसे भूल जाते हैं। परिणाम यह होता है कि आचार और विचारके बीच मतभेद और झगड़े खड़े होते हैं, अथवा ऐसे आचारोंकी रूढ़ियां दृढ़ होती हैं, जिनकी प्रशंसा नहीं की जा सकती।

९. प्रत्येक विषय पर अनेक दृष्टियोंसे सोचा जा सकता है। हो सकता है कि एक दृष्टिसे वह एक रूपमें प्रतीत हो और दूसरी दृष्टिसे दूसरे रूपमें; अतएव विचारशील मनुष्यका काम है कि वह विषयका सभी ओरसे परीक्षण करे और प्रत्येक पहलूसे उसकी मर्यादाका पता लगावे। किन्तु एक ही दृष्टिसे प्रभावित होकर उसी दृष्टिको सच माननेका आग्रह रखनेमें सन्तुलनकी कमी होती है। मैं यह समझा हूं कि दूसरे पक्षकी दृष्टिको समझनेका प्रयत्न करना, और उस पक्षकी दृष्टिका खंडन करनेका दुराग्रह रखनेके बदले इस बातका पता लगानेकी कोशिश करना कि किस दृष्टिसे उसका कहना भी सच हो सकता है, यही संक्षेपमें स्याद्वाद है। स्याद्का अर्थ है 'ऐसा भी हो सकता है'। इस विचारका अनुमोदन करनेवाला मत स्याद्वाद है। सत्य-शोधकमें इस प्रकारकी वृत्तिका होना आवश्यक है।

१०. स्याद्वादका अर्थ यह नहीं कि मनुष्य किसी भी विषय पर किसी प्रकारका कोई निश्चय ही न करे। बल्कि उसका अर्थ यह है कि किसी मर्यादित सिद्धांतको अमर्यादित समझनेकी भूल न की जाये। फलतः मर्यादा निश्चित करनेके प्रयत्नका नाम स्याद्वाद[१] है।

---

१. इस वादके विशेष शास्त्रीय विवेचनके लिए देखिये, श्री नर्मदाशंकर देवशंकर महेताका 'दर्शनोंके अभ्यासमें रक्षण-योग्य मध्यस्थता' [illegible]क लेख ('प्रस्थान', पु० ६, पृ० ३३१–३८)।

ग्यारह गौतम

११. महावीरके उपदेशोंका अत्यन्त प्रचार करने और अतिशय भक्ति भावसे उनकी सेवा करनेवाले उनके पहले ग्यारह शिष्य थे। वे सब गौतम गोत्रके ब्राह्मण थे। ग्यारहों भाई विद्वान और बड़े-बड़े कुलोंके कुलपति थे; सभी तपस्वी, निरहंकारी और मुमुक्षु थे। वेदविहित कर्मकांडमें प्रवीण थे। परन्तु यथार्थ ज्ञान द्वारा शान्ति प्राप्त नहीं कर पाये थे। महावीरने उनके संशयोंका निवारण किया और उन्हें साधुकी दीक्षा दी।

उत्तरकाल

शिष्य-शाखा

महावीरने जैन धर्ममें नया चेतन उत्पन्न करके उसे पुनः प्रतिष्ठित किया। उनके उपदेशके कारण जनता एक बार फिर जैन धर्मकी ओर आकर्षित हुई; देशमें वैराग्य और अहिंसाकी एक नई लहर फिर दौड़ गई। अनेक राजाओं, गृहस्थों और स्त्रियोंने संसारका त्याग करके संन्यास-धर्म ग्रहण किया। उनके उपदेशोंके परिणाम-स्वरूप न केवल जैन धर्म [illegible] सदाके लिए दृढ़ हो गया, बल्कि [illegible] परिणाम-स्वरूप वैदिक धर्ममें भी अहिंसा परम धर्म मानी गई और [illegible] सिद्धांत [illegible] द्वारा भी [illegible] अपनाया गया।

२. शिष्यगण उस कालमें महावीरका जमाई जमालि और पुत्री प्रियदर्शना भी थी। आगे चलकर महावीर और जमालिके बीच मतभेद पैदा होने पर जमालिने अपने एक अलग पंथकी स्थापना की। कौशाम्बीके उदयन राजाकी माता मृगावती महावीरकी परम भक्त थी। कहा जाता है कि बादमें वह जैन साध्वी बन गई थी। बुद्धके चरित्रमें बताया गया है कि उदयनकी पटरानीने बुद्धका सम्मान करनेका यत्न किया था। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जैनों और बौद्धोंके बीच मतभेदकी दीवालें इतनी पक्की नहीं होंगी।

जमालिका मतभेद

३. महावीरने ७२ वर्षकी अवस्था तक धर्मोपदेश किया; उन्होंने जैन धर्मको नया स्वरूप दिया। उनके समयमें तीर्थंकर पार्श्वनाथका सम्प्रदाय चल रहा था। बादमें महावीर और पार्श्वनाथके अनुयायियोंने अपने भेद मिटाकर जैन धर्मको एकरूपता प्रदान की और तबसे जैनोंने महावीरको अन्तिम तीर्थंकरके रूपमें स्वीकार किया। ७२ वें वर्षमें कार्तिक वदी अमावसके दिन महावीरका निर्वाण हुआ।

निर्वाण

४. इस बातका पता लगाना कठिन है कि महावीरके उपदेशोंका परिणाम उनके अपने समयमें ही कितना प्रबल था। किन्तु इस सम्प्रदायने हिन्दुस्तानमें अपनी जड़ें गहरी डाल दी हैं। किसी जमानेमें वैदिकों और जैनोंके बीच भारी झगड़े चले; किन्तु आज दोनों सम्प्रदायोंके बीच किसी प्रकारकी शत्रुता रही नहीं है। इसका

जैन-सम्प्रदाय

कारण यह है कि जैन धर्मके कई तत्त्वोंको वैदिकोंने—और विशेषकर वैष्णव सम्प्रदायों तथा पौराणिकोंने—इतनी परिपूर्णताके साथ अपने अन्दर सम्मिलित कर लिया है, और इसी प्रकार जैनोंने भी देश-कालके अनुसार इतने वैदिक संस्कार स्वीकार कर लिये हैं कि अब इन दो धर्मोंके बीच प्रकृति अथवा संस्कारका कोई भारी भेद रह नहीं गया है। अब आज जैनोंके लिए वैदिक बनने अथवा वैदिकोंके लिए जैन बननेका कोई भारी कारण भी रहा नहीं है; और यदि ऐसा हो भी तो उसके कारण किसी नितान्त भिन्न वातावरणमें प्रवेश करने-जैसा लगे, ऐसी भी कोई बात नहीं। तत्त्वज्ञानको समझनेके बारेमें दोनोंके भिन्न-भिन्न वाद[1] हैं; किन्तु यों तो वैदिक धर्ममें भी अनेक वाद हैं। फिर भी दोनोंका अन्तिम निश्चय और साधन-मार्ग भी एक ही प्रकारका माना जाता है। वैदिक धर्म आज बहुधा भक्तिमार्गी है और जैन धर्म भी भक्तिमार्गी ही है। अत्यन्त भक्तिभावसे इष्ट देवताकी उपासना करके चित्त शुद्ध करना, मनुष्यत्वकी सब उत्तम सम्पत्तियां प्राप्त करके अन्तमें उनका भी अभिमान न रखना और आत्म-स्वरूपमें स्थिर हो जाना यही दोनोंका ध्येय है। दोनों धर्मोंने पुनर्जन्मके वादको अंगीकार करके ही अपनी जीवन-पद्धतिकी रचना की है। जिनके सामाजिक व्यवहारोंमें आज जैन और वैदिक अत्यन्त निकट सम्पर्कमें आते हैं; कई जगहोंमें दोनोंके बीच रोटी-बेटी-व्यवहार भी होता है। फिर भी एक-दूसरेके धर्मोंके बारेमें बहुत अज्ञान और [illegible] [illegible] भी [illegible] है।

१. देखिये, आगे टिप्पणी-[illegible]

ऐसा बहुत कम पाया जाता है कि जैन व्यक्ति वैदिक धर्म, अवतार और वर्णाश्रम-व्यवस्थाके बारेमें कुछ न जानता हो, किन्तु यह एक बहुत ही मामूली बात है कि जैन धर्मके तत्त्वों, तीर्थंकरों आदिके बारेमें वैदिक कुछ भी नहीं जानते । यह स्थिति इष्ट नहीं है। मुमुक्षुके लिए यह आवश्यक है कि वह सब धर्मों और सब ग्रंथोका अवलोकन करे, सब मतों और पंथोंके बारेमें निर्वैर वृत्ति रखे, सारासारका विवेक करके प्रत्येकमें से सारका स्वीकार तथा असारका त्याग करे। कोई धर्म ऐसा नहीं है, जिसमें सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदिको स्वीकार न किया गया हो; कोई धर्म ऐसा नही है, जिसमें कालवश अशुद्धियोंने प्रवेश न किया हो। अतएव जिस प्रकार वर्णाश्रम–व्यवस्थाके धर्मोका पालन करते हुए भी उनका मिथ्याभिमान रखना उचित नहीं, उसी प्रकार अपने धर्मका अनुसरण करने पर भी उसका मिथ्याभिमान त्याज्य ही है ।

टिप्पणियां

टिप्पणी पहली : मातृभक्ति — ज्ञान और साधुतामें श्रेष्ठ संसारके सब पुरुषोंके जीवन-चरित्रोंमें माता-पिता और गुरुके प्रति उनका अपार प्रेम ध्यान खींचनेवाला है। सहसा यह पाया नहीं जाता कि जिसने बचपनमें माता-पिताकी और गुरुकी अत्यन्त प्रेमसे सेवा करके उनके आशीर्वाद प्राप्त नहीं किये, वह महापुरुष बन सका हो। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, एकनाथ, सहजानन्द स्वामी, निष्कुलानन्द आदि सब माता-पिता अथवा गुरुको ही देवतुल्य समझनेवाले थे। ये सारे सत्पुरुष अत्यन्त वैराग्यनिष्ठ भी थे।

कइयोंका यह विश्वास है कि प्रेम और वैराग्य दो विरोधी वृत्तियां हैं। इस मान्यताके अनुसार लिखे गये कई भजन हिन्दुस्तानकी भिन्न-भिन्न भाषाओंमें हैं। इस मान्यताके प्रभावमें आकर सम्प्रदाय-प्रवर्तकोंने प्रायः प्रेमवृत्तिका नाश करनेके उपदेश भी किये हैं। 'माता-पिता मिथ्या हैं', 'कुटुम्बी सब स्वार्थके ही सगे हैं', 'किसकी मां और किसका बाप ?' आदि प्रेमवृत्तिका नाश करनेवाली उपदेश-श्रेणीका हमारे धार्मिक ग्रंथोंमें अभाव नहीं है। इस उपदेश-श्रेणीसे प्रभावित होकर कुछ लोग प्रत्यक्षकी भक्तिको गौण मानकर परोक्ष अवतारों अथवा काल्पनिक देवोंकी भक्तिका माहात्म्य समझकर, अथवा भ्रान्तिपूर्ण वैराग्यकी भावनासे प्रेरित होकर कुटुम्बियोंके प्रति निष्ठुर बन जाते हैं। [illegible] सेवा करते हुए प्राणार्पण कर देने पर भी जिन माता-पिता और गुरुके ऋणसे उऋण नहीं हुआ जा सकता, उनसे अधिक पूजनीय और पवित्र [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

छूटना ही पड़ा है। जब अपनी सहज पूज्य-भावना, वात्सल्य-भावना, मित्र-भावना आदिको अपने स्वाभाविक सम्बन्धोंमें प्रकट करना अपनी भूलके कारण उनके लिए असंभव हो गया, तो उन्हें इन भावनाओंका कृत्रिम रीतिसे भी विकास करना पड़ा है। अर्थात् किसी देवीमें, पाण्डुरंगमें, बालकृष्णमें, कन्हैयामें, द्वारकाधीशमें अथवा दत्तात्रेयमें मातृभाव, पितृभाव, पुत्रभाव, पतिभाव, मित्रभाव अथवा गुरुभावका आरोपण करना पड़ा है अथवा किसी दूसरेको माता-पिता मानना पड़ा है या शिष्यके प्रति पुत्र-भावका विकास करना पड़ा है। किन्तु इन भावनाओंके विकासके बिना तो किसीकी उन्नति हुई ही नहीं है।

वैराग्यका अर्थ प्रेमका अभाव नहीं, बल्कि प्रेम-पात्र व्यक्तिसे सुख पानेकी इच्छाका नाश है। उन्हें स्वार्थी मानकर उनका त्याग करनेमें वैराग्य नहीं, बल्कि उनके बारेमें अपने स्वार्थोंका त्याग और उन्हें सच्चा सुख पहुंचानेके लिए अपनी सारी शक्तिका व्यय करनेमें वैराग्य है। प्राणियोंके सम्बन्धमें वैराग्यकी भावनाका यह लक्षण है।

किन्तु जड़ सृष्टिके प्रति वैराग्यका अर्थ है, इंद्रियजन्य सुखोंके विषयमें अनासक्ति। यह समझकर कि पंच-विषय अपने सुख-दुःखके कारण नहीं हैं, जब तक उनके विषयमें अस्पृहा उत्पन्न नहीं होती, तब तक प्रेम-वृत्तिका विकास अथवा आत्मोन्नति असंभव है।

प्रेम तो हो परन्तु उसमें विवेक न हो, तो वह कष्टदायक बन जाता है। जिस पर प्रेम है, उसे सच्चा सुख पहुंचानेकी इच्छा, किसी दिन उसका भी वियोग होगा ही, इस सत्यको समझकर उसे स्वीकार कर लेनेकी तैयारी और प्रेमके रहते भी दूसरे कर्तव्योंका पालन, ये विवेककी निशानियां हैं। इस प्रकारका विवेक न हो, तो प्रेम मोहरूप माना जायगा।

टिप्पणी दूसरी : भाग्य — जो परिणाम हमें प्रत्यक्ष रूपसे दिखाई पड़ते हैं, किन्तु जिनके कारणोंको अत्यन्त सूक्ष्मताके अथवा अन्य किसी ... प्रमाण द्वारा निश्चित नहीं किया जा सकता, उन

परिणामोंको समझानेके लिए उनके कारणोंके बारेमें जो कल्पना की जाती है, उसे वाद (hypothesis theory) कहा जाता है। उदाहरणके लिए, हम रोज यह देखते हैं कि सूर्यकी किरणें पृथ्वी तक आती हैं। यह परिणाम हमारे सामने प्रत्यक्ष है, किन्तु ये किरणें करोड़ों मीलोंका अन्तर तय करके हमारी आंखोंके साथ किस प्रकार टकराती है, अर्थात् तेजकी किरणें प्रकाशमान वस्तुओंमें ही न रहकर आगे क्यों बढ़ती हैं, इसका कारण हम प्रत्यक्ष रीतिसे नहीं जान सकते। किन्तु चूंकि हमें यह विश्वास है कि विना कारणके कोई कार्य हो नहीं सकता, इसलिए हम किसी न किसी कारणकी कल्पना करनेका प्रयत्न करते हैं; जैसे किरणोंके मामलेमें 'ईथर' तत्त्वके आन्दोलन प्रकाशके अनुभव और विस्तारके कारण माने जाते हैं। आन्दोलनकी ऐसी कल्पना वाद कही जाती है। प्रमाणों द्वारा यह कभी सिद्ध नहीं होता कि ऐसे आन्दोलन होते ही हैं। इस प्रकारकी कल्पना जितनी सरल और स्थूल परिणामोंको समझानेके लिए उपयुक्त होती है, उतना ही वह वाद विशेष ग्राह्य बनता है। लेकिन जब भिन्न-भिन्न विचारक भिन्न-भिन्न कल्पनाओं अथवा वादोंकी रचना करके एक ही परिणामको समझाते हैं, तब इन वादोंके बारेमें मतभेद पैदा होता है। मायावाद, पुनर्जन्मवाद आदि इस प्रकारके वाद हैं। यह भूलना न चाहिये कि ये सब जीवन और जगतको समझानेके लिए की गई कल्पनाएँ ही हैं। जिसकी बुद्धिको जो वाद पटे, उसे ग्रहण करके इन दोनोंको समझ लेनेमें दोष नहीं; किन्तु जब इस वादको एक सिद्धान्त अर्थात् सिद्ध की हुई वस्तुके रूपमें स्वीकार किया जाता है, तब वादोंके कारण परस्पर झगड़नेकी ही वृत्ति बनती है। [illegible]

भोग और संयमकी मर्यादा आदिकी रचना की जाती है, तब तो कठिनाइयोंका कोई पार ही नहीं रहता।

जिज्ञासुको आरम्भमें कोई न कोई वाद स्वीकार तो करना ही होता है। किन्तु उसे सिद्धान्तके रूपमें मानकर उसका अतिशय आग्रह रखना उचित नहीं। चित्तका एक चमत्कार यह है कि जैसी कल्पना हम अपने लिए स्थिर करते हैं, वैसा अनुभव उससे प्राप्त कर सकते हैं। यदि कोई मनुष्य अपनेको राजा माना करे, तो उसकी यह कल्पना इतनी दृढ़ हो सकती है कि कुछ समयके बाद वह अपनेमें राजापनका ही अनुभव करे। किन्तु इस प्रकार किया गया कल्पनाका अथवा वादका साक्षात्कार कोई सत्य साक्षात्कार नहीं होता। जो अनुभव किसी भी वाद या कल्पनासे परे होता है, वही सत्य कहलाता है।

इस प्रकार सोचनेसे पता चलेगा कि मित्रताका सुख प्रत्यक्ष है, वैराग्यकी शान्ति प्रत्यक्ष है, माता, पिता और गुरुकी सेवाका शुभ परिणाम प्रत्यक्ष है, प्राणिमात्रके प्रति प्रेम रखनेका फल प्रत्यक्ष है, शम-दमके परिणाम प्रत्यक्ष हैं; दूसरी ओर भोग-विलासके बुरे परिणाम प्रत्यक्ष हैं, वैरभावसे उत्पन्न होनेवाली मानसिक वेदना प्रत्यक्ष है, माता, पिता, गुरु आदिको सतानेसे होनेवाली तिरस्कार-पात्रता प्रत्यक्ष है। जैसा कि भगवान महावीर कहते हैं, 'स्वर्गका सुख परोक्ष है, मोक्ष (मरनेके बादकी जन्म-मरण-रहित दशा) का सुख अत्यंत परोक्ष है, किन्तु प्रशम (निर्वासना, निःस्पृहता) का सुख प्रत्यक्ष है।
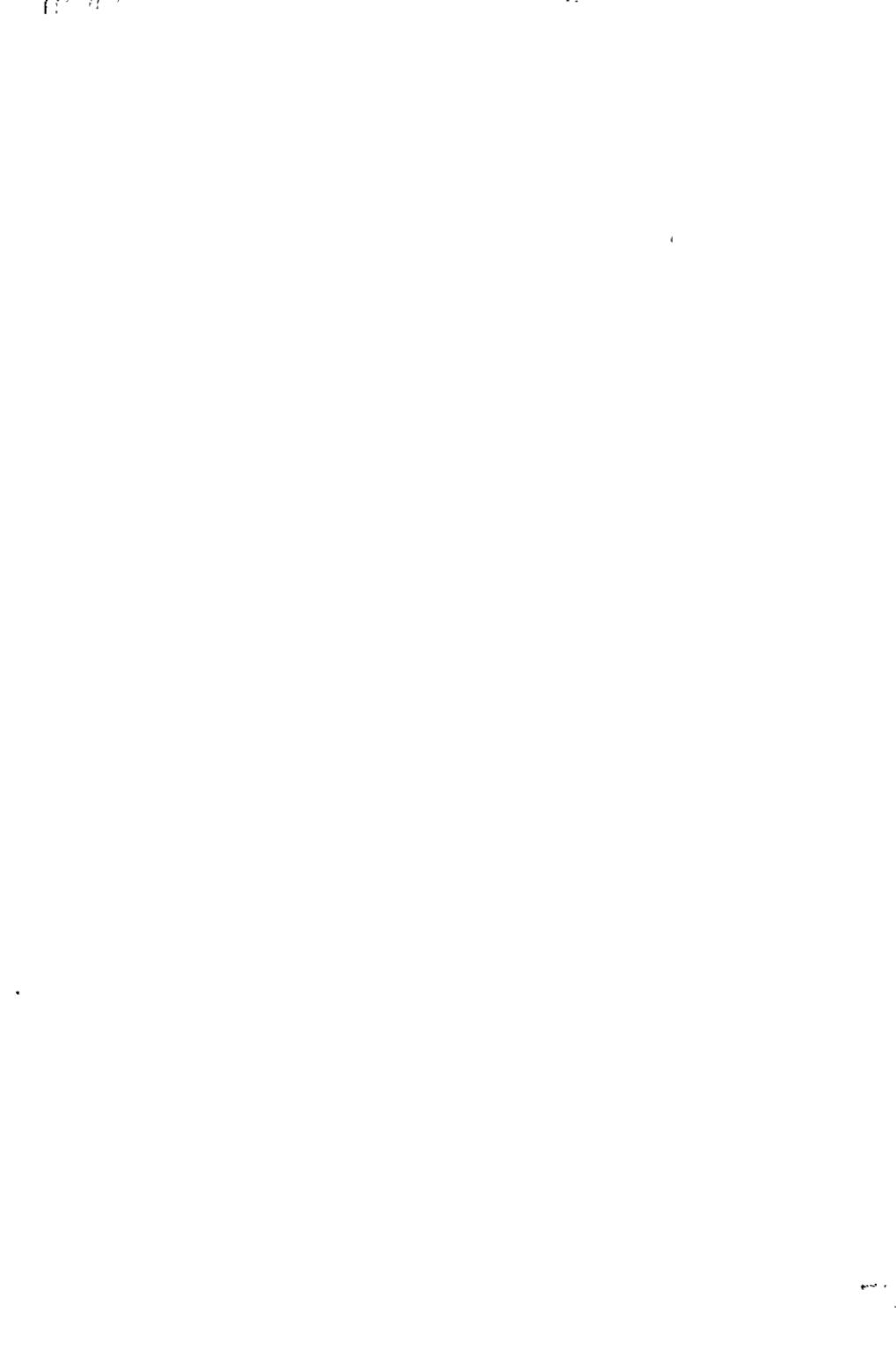
बुद्ध-महावीर

[समालोचना]

बुद्ध और महावीर आर्य सन्तोंकी प्रकृतिके दो भिन्न स्वरूप हैं। संसारमें जिस सुख और दुःखका सबको अनुभव होता है, स्पष्ट ही वह सत्कर्म और दुष्कर्मका परिणाम होता है। जिस सुख अथवा दुःखके कारणका पता नहीं लगाया जा सकता, वह भी किसी समय किये गये कर्मका ही परिणाम हो सकता है। मैं नहीं था और नहीं रहूंगा, ऐसा मुझे कभी लगता नहीं; इस परसे विचार उठता है कि इस जन्मसे पहले मैं कहीं न कहीं रहा ही होऊंगा और मृत्युके बाद भी कहीं रहूंगा ही; उस समय भी मैंने कर्म किये ही होंगे, और वे ही इस जन्मके मेरे सुख-दुःखके कारण होने चाहियें। जिस प्रकार दीवाल घड़ीका लोलक बायेंसे दायें और दायेंसे बायें झूलता ही रहता है, उसी प्रकार मैं जन्म और मरणके बीच झोंके खानेवाला जीव हूं। कर्मकी चाबीसे इस लोलकको गति मिली है और मिलती रहती है। जब तक यह चाबी चढ़ी हुई है, तब तक मैं इन झोंकोंसे छूट नहीं सकता। इन झोंकोंकी स्थिति दुःखदायक है; इसमें कभी-कदास सुखका अनुभव होता है, पर वह अत्यन्त क्षणिक है; यही नहीं, बल्कि इसीके कारण सामनेसे धक्का लगता है और परिणाम दुःख-रूप ही होता है। मुझे इन दुःखदायक झोंकोंसे छुटकारा पाना ही चाहिये — किसी भी तरह मुझे चाबीके इन आंटोंको खोलना ही चाहिये। इस प्रकारकी विचारधारासे प्रेरित होकर

जन्म-मरणसे मुक्ति

कुछ आर्य जन्म-मरणके झोंकोंसे छूटनेके लिए——मोक्ष-प्राप्तिके लिए——विविध प्रकारके प्रयत्न करते थे । वे कर्मकी चावीको यथासंभव शीघ्र खाली करनेका प्रयत्न करते थे । आर्य प्रजामें उत्पन्न हुए अनेकानेक मुमुक्षु इस पुनर्जन्मवादसे उत्तेजित होकर मोक्षकी खोजमें लग चुके थे । इस शोध-खोजके परिणाम-स्वरूप जिसे जिस मार्गसे शान्ति प्राप्त हुई——जन्म-मरणका डर मिट गया——उसने उस-उस मार्गका प्रचार किया । इन मार्गोंकी खोजमें से ही नाना प्रकारके दर्शनशास्त्रोंका जन्म हुआ । महावीर इस प्रकारकी प्रकृतिके एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं ।

दुःखसे मुक्ति

२. बुद्धकी प्रकृति इससे भिन्न है । जन्मसे पहलेकी और मृत्युके बादकी स्थितिकी चिंता करनेकी उनके मनमें कोई उमंग नहीं । यदि जन्म दुखःरूप है, तो भी इस जन्मका दुःख तो सहा जा चुका है । यदि पुनर्जन्म होनेवाला होगा, तो वह इस जीवनके सुकृत और दुष्कृतके अनुसार ही होगा । अतएव यह जन्म ही——अगले जन्मका कहो अथवा मोक्षका कहो——सबका आधार है । यदि इस जीवनको सुधार लेते हैं, तो भविष्यके जन्मोंकी चिंता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती । क्योंकि जिसने अपना यह जन्म सुधार लिया है उसका दूसरा जन्म इस जन्मकी तुलनामें बुरा हो, तो उससे यह सिद्ध होगा कि सत्कर्मका फल दुःख होता है । अब रहा प्रश्न इस जीवनके सुख-दुःखोंका । इस जीवनके तो पांच ही दुःख अनिवार्य रूपमें शेष रहते हैं——जरा, व्याधि, मृत्यु, प्रिय वस्तुका वियोग और अप्रिय वस्तुका योग । इसके अतिरिक्त तृष्णाके कारण भी सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं । यदि कोई खोज करनी है, तो यह इन दुःखोंसे छूटनेके मार्गकी करनी है; यदि [illegible]

सेवा करनी है, तो वह इस विषयमें ही करने योग्य है । इस विचारसे प्रेरित होकर वे इन दुःखोंकी औषधिकी खोजमें निकल पड़े । मैं इन दुःखोंसे छुटकारा पाऊं और संसारको छुड़ाकर उसे सुखी करूं । दीर्घ कालके प्रयत्नोंके बाद उन्होंने अनुभव किया कि ऊपर गिनाये गये पांच दुःख अनिवार्य हैं । उन्हें सहन करनेके लिए मनको बलवान बनाना ही होगा । किन्तु दूसरे दुःख चूंकि तृष्णासे उत्पन्न होते हैं, इसलिए उन्हें नष्ट करना संभव है । दूसरा जन्म होगा तो वह भी तृष्णाओंके बलके कारण ही होगा । मनको सदाके लिए चिंतन करनेसे रोका नहीं जा सकता । यदि वह सद्विषयोंमें न रमा, तो वासनाओंको ही इकट्ठा करता रहेगा । अतएव उसे सद्विषयोंमें रमाये रखनेका प्रयत्न करना ही परम पुरुषार्थ है । इससे सात्विक वृत्तिके सुख और शान्ति प्रत्यक्ष रूपसे प्राप्त होंगे; इससे दूसरे प्राणियोंको सुख होगा; इससे मन तृष्णाके प्रवाहमें बहेगा नहीं, और इसके निमित्तसे संसारकी सेवा होती रहेगी । यदि यह सच हो कि तृष्णा ही पुनर्जन्मका कारण है, तो मनके वासनाहीन बन जाने पर पुनर्जन्मका डर रखना आवश्यक नहीं रहता । यदि यह सच हो कि 'ध्रुवं जन्म मृतस्य च' (जो मरता है, उसका जन्म निश्चित ही है), तो भी जो मन सद्विषयोंमें ही रमा रहता है, उसे चिंता करनेकी आवश्यकता नहीं । इस जन्ममें जो पांच दुःख अनिवार्य हैं, उनसे भिन्न कोई छठा दुःख दूसरे जन्ममें भी होगा नहीं । यदि उन दुःखोंको सहन कर लेनेकी आज तैयारी है, तो फिर दूसरे जन्ममें भी उन्हें सहन करना होगा, इसकी चिंतामें व्यग्र होना आवश्यक नहीं । अतएव जन्म-मरण आदि दुःखोंका डर भुलाकर, मनको शुभ कार्यों, शुभ विचारों आदिमें रमा देना

यही शान्तिका निश्चित मार्ग है। इस मार्गको विशेष विस्तारके साथ समझाकर बुद्धने आर्य अष्टांगिक मार्गका उपदेश किया।

३. जो सुखकी इच्छा करता है, वही दुःखी है; जो स्वर्गकी इच्छा रखता है, वही अकारण नरक-यातना भोगता है; जो मोक्षकी वासना रखता है, वही अपनेको बद्ध अनुभव करता है; जो दुःखोंका स्वागत करनेके लिए सदा तैयार है, वह हमेशा शान्त ही है; जो सतत सद्विचार और सत्कर्ममें रत है, उसके लिए जैसा यह जन्म है, वैसे दूसरे हजार जन्म भी हों, तो भी चिंता क्या? वह पुनर्जन्मकी इच्छा भी नहीं रखता और उससे डरता भी नहीं। जो सुखी प्राणियोंके प्रति सदैव मित्रभावसे देखता है, दुखियोंके प्रति करुणासे भर जाता है, पुण्यवानको देखकर आनन्दित होता है और पापियोंको सुधार न सके तो भी उनके लिए मनमें कमसे कम दयाभाव और अहिंसाकी वृत्ति तो रखता ही है, उसके लिए संसारमें भयानक है ही क्या? उसका जीवन संसारके लिए भार-रूप हो ही कैसे सकता है? इतने पर भी यदि किसीको इससे भी ईर्ष्या हो, तो भी वह उसे व्याधि, मृत्यु, प्रिय वस्तुके वियोग अथवा अप्रिय वस्तुके योगके अतिरिक्त दूसरा कौनसा दुःख दे सकता है? विचारकी न्यूनाधिक ऐसी ही भूमिका पर दृढ़ रहकर बुद्ध और महावीरने शान्ति प्राप्त की।

४. इन दोनों प्रयत्नोंमें सत्यके अन्वेषणकी आवश्यकता

सत्यकी जिज्ञासा

पड़ती ही है। संसारका [illegible] क्या है? 'मैं', 'मैं' के रूपमें इस देहके अन्दर जिसका भान होता रहता है, वह 'मैं' कौन हूं, कैसा हूं, किसका हूं? यह [illegible]

है? मेरे और संसारके बीचमें कैसा सम्बन्ध है? तीसरी प्रकृतिके कुछ आर्योंने सत्य तत्त्वकी शोधका ही प्रयत्न किया। किन्तु जिस प्रकार बीजको पहचान लेनेसे पेड़का समग्र ज्ञान नहीं होता, अथवा पेडको पहचान लेनेसे बीजका अनुमान नहीं होता, उसी प्रकार केवल अन्तिम सत्य तत्त्वको जान लेनेसे सच्ची शान्ति प्राप्त नहीं होती, और ऊपर दी गई भूमिका पर आरूढ़ हो चुकनेके बाद भी यदि किसीको सत्य तत्त्वकी जिज्ञासा रह जाती है, तो उसे भी अशान्ति बनी रहती है। सत्यको जान चुकने पर भी आखिर ऊपर बताई भूमिका पर दृढ होना पड़ता है, अथवा उस भूमिका पर दृढ हो जाने पर भी सत्यकी शोध शेष रहती है। किन्तु जिस प्रकार पेड़को पहचाननेवाले मनुष्यको बीजकी खोजके लिए केवल फलकी ऋतुके आने तक ही ठहरना होता है, उसी प्रकार उक्त भूमिका तक पहुंचे हुए व्यक्तिके लिए सत्य दूर नहीं रहता।

निश्चित भूमिका

५. जन्म-मृत्युके फेरोंसे मुक्ति चाहनेवालोंको, हर्ष-शोकसे मुक्त होनेकी इच्छा रखनेवालोंको, आत्माकी खोजमें लगे हुओंको, सारांश सब किसीको आखिर तो व्यावहारिक जीवनमें ऊपर दी गई भूमिका पर आना ही पड़ता है। चित्तकी शुद्धि, निरहंकारिता, सब वादों और कल्पनाओंके विषयमें अनाग्रह, शारीरिक, मानसिक अथवा किसी भी प्रकारके सुखके लिए निरपेक्ष भाव, दूसरों पर नैतिक सत्ता चलानेकी भी अनिच्छा, जो इस प्रकार अपने अधीन है कि छोड़ा नहीं जा सकता, उसे दूसरेके लिए अर्पण करना—यही शान्तिका मार्ग है;

इसीमें संसारकी सेवा है; प्राणिमात्रका सुख है; यही उत्कर्षका उपाय है। जिस तरह हम किसीसे कहते हैं कि इस रास्ते सीधे चलो जाओ, जहां यह रास्ता खतम होगा, वहीं तुम्हें जिस घर जाना है वह घर मिलेगा; उसी प्रकार इस मार्ग पर चलनेवाला व्यक्ति सत्य तत्त्वके सामने जाकर खड़ा हो जायेगा। यदि कुछ शेष ही रहा, तो वहांके किसी निवासीको पूछ कर यह निश्चय करना ही शेष रहेगा कि यही सत्य तत्त्व है अथवा नहीं?

६. पर संसार इस प्रकारके विचारोंको पचा नहीं पाता।

बुद्ध-प्रकृतिकी विरलता

वादोंकी अथवा परोक्षकी पूजामें उलझे विना, ऐहिक अथवा पारलौकिक किसी भी प्रकारके सुखकी आशा रखे विना, विरले ही मनुष्य ऐसे होते हैं जो सत्य, सदाचार और सद्-विचारको ही अपना लक्ष्य वनाकर उसकी उपासना करते रहते हैं। इन वादों, पूजाओं और आशाओंके संस्कार इतने वलवान हो वैठते हैं कि वुद्धिको इनके वंधनसे छुड़ानेके वाद भी व्यवहारमें इनका वन्धन छुड़ाया नहीं जा पाता। और चूंकि ऐसे मनुष्यका व्यवहार संसारके लिए दृष्टान्त-रूप होता है, इसलिए संसार इन संस्कारोंको अधिक जोरसे पकड़े रहता है।

७. ब्राह्मण-धर्ममें चौबीस अथवा दस अवतारोंकी, बौद्धोंमें चौबीस बुद्धों और जैनोंमें चौबीस तीर्थंकरोंकी मान्यता पुष्ट हुई है। सबसे पहले इस मान्यताका जन्म किसके द्वारा हुआ, इसका पता लगाना कठिन है। किन्तु अवतारवाद और बुद्ध-तीर्थंकरवादके बीच एक भेद है। यह नहीं माना गया है कि बुद्ध अथवा तीर्थंकरके रूपमें [illegible] जन्मसे ही पूर्ण, ईश्वर अथवा मुक्त होता है। और [illegible]

तक साधना करता हुआ जीव अन्तमें पूर्णताकी अन्तिम सीढी पर आ पहुंचता है और जिस जन्ममें वह इस सीढ़ीको भी पार कर लेता है, उस जन्ममें वह बुद्धत्व अथवा तीर्थंकरत्वको प्राप्त होता है। अवतारके विषयमें जीवत्वकी अथवा साधकताकी मान्यता नहीं है। कल्पना यह है कि अवतारी तो आरंभसे ही ईश्वर अथवा मुक्त है और कोई न कोई कार्य करनेके लिए विचारपूर्वक जन्म धारण करता है। इसलिए वह जीव नहीं माना जाता, मनुष्य नहीं माना जाता। यह कल्पना भ्रम उत्पन्न करनेवाली सिद्ध हुई है; और बुद्ध तथा जैन धर्मको भी इसका थोड़ा-बहुत स्पर्श हुआ है। इस कारण बुद्ध और महावीरके अनुयायी भी वादों और परोक्ष देवोंकी पूजामें उलझ गये हैं, और फलतः दुनिया जिस तरह चलती आई थी उसी तरह फिर चलती रही है।[1]

---

१. यहां यह बात सब प्रकारकी भक्तिके प्रति आदर घटाने या मिटानेके आशयसे नहीं लिखी गई है। हमारे समान साधारण मनुष्योंके लिए परावलम्बनमें से स्वावलम्बनमें, असत्यमें से सत्यमें, और अज्ञानमें से ज्ञानमें पहुंचनेका मार्ग है। किन्तु यह भूलना नहीं चाहिये कि ध्येय स्वावलम्बन, सत्य और ज्ञान तक पहुंचनेका और भक्तिका उद्देश्य चित्तशुद्धिका होना चाहिये।

प्राचीन समयमें जो अवतारी पुरुष हो गये हैं, वे हमारे लिए दीप-स्तम्भके समान हैं। उनकी भक्तिका अर्थ है, उनके चारित्र्यका सतत ध्यान। उनकी भक्तिका निषेध हो ही नहीं सकता। किन्तु जैसे-जैसे अवतार परोक्ष होते जाते हैं, वैसे-वैसे उनका माहात्म्य अधिक प्रदीप्त होता है; ऐसा न करके अपने समयके सत् पुरुषोंका पता लगाकर उनकी महिमाको समझनेकी योग्यता हममें होनी चाहिये। जिस प्रकार संसार असुर-रहित नहीं है, उसी प्रकार वह संत-रहित भी नहीं होता।

हमारी कुछ विशिष्ट पुस्तकें

एकला चलो रे	२.००
बिहारकी कौमी आगमें	३.००
ईशु ख्रिस्त	०.६२
जड़मूलसे क्रांति	१.५०
तालीमकी बुनियादें	२.००
शिक्षाका विकास	१.२५
शिक्षामें विवेक	१.५०
स्त्री-पुरुष-मर्यादा	१.७५
आशाका एकमात्र मार्ग	२.००
गांधीजी : एक झलक	१.२५
गांधीजीकी साधना	३.००
ग्राम-संस्कृतिका अगला चरण	१.८०
नेहरूजी – अपनी ही भाषामें	३.५०
बापूकी छायामें	४.००
बुनियादी शिक्षामें अनुबन्धकी कला	२.५०
राजा राममोहन रायसे गांधीजी	२.००
सर्वोदय तत्त्व-दर्शन	६.००
हमारी बा	२.००

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद – १४